धर्मायण

मूल्य : 45 रुपये
अंक 137
अग्रहायण,
2080 वि. सं.

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

विवाह–विशेषांक

महावीर मन्दिर न्यास
द्वारा
स्थापित और संचालित संस्थान
संस्थान, फुलवारी शरीफ, पटना
संस्थान, चिरैयाटांड पुल के नीचे, कंकड़बाग, पटना
अस्पताल, एल.सी.टी. घाट रोड, पटना
चिरैयाटांड पुल के नीचे, कंकड़बाग, पटना
सी.टी. घाट रोड, पटना
नकी नगर, पूर्वी चम्पारण
रामजानकी मन्दिर, साहू पोखर, मुजफ्फ
विशालनाथ महादेव मन्दिर, कोनहार
रामायण विश्वविद्यालय (प्रस्तावित)
राघव आरोग्य मन्दिर, अयोध्या, (प्रस्ता
राम-रसोई (निःशुल्क भोजन), अ
सीता-रसोई (निःशुल्क

2023.11.11 10:32

धर्मायण

Title Code–BIHHIN00719

आलेख-सूची

1. प्राणैस्ते प्राणान् संदधामि	-सम्पादकीय	3
2. विवाह : एक पवित्र संस्कार	- श्री राधा किशोर झा	7
3. विवाह : एक दृष्टि	- विद्यावाचस्पति महेश प्रसाद पाठक	14
4. समानगोत्रप्रवर में विवाह-निषेध एवं अपवाद	- निग्रहाचार्य भागवतानन्द गुरु	20
5. भारतीय जनजातियों में विवाह	- श्री संजय गोस्वामी	25
6. विवाह का काव्य-सन्दर्भ	- डॉ. राजेन्द्र राज	30
7. विवाह का स्वरूप व महत्ता	- श्री रवि संगम	33
8. जड़ों से कटती वैवाहिक प्रणाली	- प्रीति सिन्हा	43
9. प्राचीनतम उपलब्ध विवाह-पद्धति में वर्णित विधि		49
10. राम : एक मीमांसा	- श्री अनिरुद्ध त्रिपाठी 'अशेष'	51
11. महाकवि भास के अभिषेकनाटक में श्रीरामकथा	- डॉ. नरेन्द्रकुमार मेहता	68
12. मन्दिर समाचार (नवम्बर, 2023ई.)		73
13. व्रत-पर्व, अग्रहायण, 2080 वि.सं.		79

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोधपरक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक 137
अग्रहायण, 2080 वि. सं.
28 नवम्बर से 26 दिसम्बर, 2023ई.

सम्पादक
भवनाथ झा

पत्राचार :
महावीर मन्दिर,
पटना रेलवे जंक्शन के सामने
पटना- 800001, बिहार
फोन: 0612-2223798
मोबाइल: 9334468400

E–mail:
dharmayanhindi@gmail.com
Website:
www.mahavirmandirpatna.org/dharmayan/

Whatsapp:
9334468400

मूल्य : 45 रुपये

पाठकीय प्रतिक्रिया

(अंक संख्या 136, कार्तिक, 2080 वि.सं.

कार्तिक मास का अंक पढ़ा। सम्पादकीय में ही बहुत सारी जानकारी भरी हुई है, बहुत पौराणिक प्रसंगों का सन्दर्भ के साथ विवेचन हुआ है। सबसे अच्छा लगा कि दीपावली के एक अप्रचलित परिप्रेक्ष्य का उद्भेदन किया है। हनुमान-जन्मोत्सव के प्रसंग बाबू गोपीश्वरसिंह के गीतों ने अभिभूत कर दिया। पूर्वकाल में राजे-महाराजे तथा जमींदार अपनी संस्कृति को बचाकर रखा करते थे। विद्वानों की भूमि मिथिला में गीत-लेखन स्वाभाविक है। संस्कृति के ऐसे संरक्षकों को नमन। हमलोग विद्यापति को केवल कवि के रूप में जानते थे। उगना की कहानी पढ़ा करते थे। इस अंक में कार्तिक मास के कृत्यों पर उनका धर्मशास्त्रीय विवेचन पढ़कर हर्षमिश्रित आश्चर्य हुआ। डा. राधानन्दन सिंह के आलेख में अनेक नवीन तथ्य आये हैं, जो पूर्व प्रकाशित पितृभक्ति-विशेषांक में भी विवेचित नहीं हुए थे। उन्होंने हमारे पितरों के प्रति श्रद्धा बढ़ा दी है। डा. व्रजमोहन जावलिया का आलेख इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसके कारण यह सम्पूर्ण अंक प्रसिद्धि पायेगा। ऐसे महत्त्वपूर्ण आलेख की पुनःप्रस्तुति के लिए सम्पादक को कोटिशः बधाई। डा. मयंक मुरारी का आलेख उन वामपंथियों की आँखें खोलने वाला है, जो यह अपवाह फैलाते फिरते हैं कि भारत में प्राचीन काल में लोग सुरा पीते थे। सोम और सुरा के अंतर को लेखन ने वैज्ञानिक ढ़ंग से समझाया है। हर आलेख पर सम्पादक की टिप्पणी तो लाजबाब है। मैं लगभग 2 वर्षों से सभी अंक पढ़ता रहा हूँ। इन टिप्पणियों में सम्पादक सनातन धर्म को व्यापक ऊँचाई देने का प्रयत्न करते रहे हैं। पं. गोविन्द झा के निधन का समाचार सुनकर हम सभी आहत हैं। 100 से अधिक की अवस्था में वे जिस प्रकार सारस्वत साधना में लगे रहे हैं, हम वृद्धों के लिए संजीवनी छोड़ गये हैं। एक चित्र में लैपटॉप पर जिस प्रकार वे मैग्नीफाइंग ग्लास का उपयोग कर पढ़ते नजर आ रहे हैं, हमलोगों के लिए एक संदेश हैं। ऐसे सन्त विद्वान् को नमन एवं श्रद्धांजलि! सभी को बधाई!!

- सत्यप्रकाश दूबे
ढोलखेड़ी, विदिशा 464001
मध्यप्रदेश

आपको यह अंक कैसा लगा? इसकी सूचना हमें दें। पाठकीय प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित हैं। इसे हमारे ईमेल dharmayanhindi@gmail.com पर अथवा ह्वाट्सएप सं.—+91 9334468400 पर भेज सकते हैं।

सनातन परम्परा में लोकाचार की मान्यता रही है। मनुस्मृति ने इसे 'सदाचार' कहा है। अन्य स्मृतिकार तथा पुराणकार भी इसे धर्म के एक साधन के रूप में मान्यता दे रहे हैं। आम जनता से धर्म को जोड़ने के लिए लोकाचार पर विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है। **लोकाचारात् स्मृतिर्ज्ञेया स्मृतेश्च श्रुतिकल्पनम्** की जो प्रक्रिया है उसे आज प्रचारित किया जाए तो हम पूरे समाज के साथ एक धरातल पर समरस प्रतीत होंगे। यह सामाजिक समरसता का कारक तत्त्व सिद्ध होगा। भारत के हर क्षेत्र में ऐसे अनेक लोकाचार हैं, जो सीधे किसी न किसी धार्मिक मान्यता से जुड़े हैं। लोक की धारा निरन्तर गतिशील है। ऐसे अनेक धार्मिक कृत्य हैं जो केवल लोक परम्परा में हैं उनका शास्त्र में उल्लेख नहीं है।

विस्तार से– पृ. 42 पर

प्राणैस्ते प्राणान् संदधामि

सम्पादकीय

—भवनाथ झा

पुराणों में शाप का एक बहुत ही सामान्य प्रयोग है- **तिर्यग्योनिगतो भव**- यानी तुम पशुओं-पक्षियों जैसा आचरण करने वाला बन जाओगे। यह पशुओं-पक्षियों का कैसा आचरण है? इसे हितोपदेश स्पष्ट करता है-

आहार-निद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

आहार लेना, सोना, अहित देखते हुए डर जाना तथा मैथुन कर संतान उत्पन्न करना- ये तो पशु-पक्षी तथा मनुष्यों में एक समान होते हैं, पर मनुष्य इनसे विशिष्ट इसलिए है क्योंकि मनुष्य धर्म का आचरण करता है।

उपर्युक्त इन चारों विषयों में मनुष्य का धर्म अलग है। इनमें से मैथुन के द्वारा संतान की उत्पत्ति के लिए मनुष्य का धर्म पृथक् है। यही धर्म विवाह सम्बन्धी व्यवस्थाओं को जन्म देता है। संसार के प्रत्येक सभ्य समाज में विवाह के सम्बन्ध में नियम हैं। यहाँ पर हम सनातन धर्म की दृष्टि से उन नियमों को सूत्र के रूप में देखेंगे। विवाह में मुख्यतः दो बातों का ध्यान रखा जाता है-

1. किस पुरुष को किस कन्या के साथ विवाह करना चाहिए? इस विषय पर भी पहली व्यवस्था है कि कन्या का विवाह पहले न हो चुका हो, वह रक्तसम्बन्ध/सपिण्डता में नहीं आती हो। ये सामान्य नियम हैं, जो भारत के हर क्षेत्र में मान्य हैं। किसी किसी विशेष परम्परा में इसमें कुछ छूट दी गयी है। दक्षिण में मातृसपिण्ड कन्या से विवाह मान्य है, किन्तु उत्तर भारत में नहीं। मगध में कुछ विशेष परिस्थिति में समान गोत्र में भी विवाह की मान्यता है। इसी सन्दर्भ में आधुनिक सुधारकों ने विधवा-विवाह पर अपनी सम्मति दी है। मिथिला में माता की ओर से पाँचवीं पीढ़ी तथा पिता की ओर से छठी पीढी तक की संतान से विवाह का निषेध है तथा इसकी गणना के लिए यहाँ 14वीं शती से पंजी उपलब्ध है। यह विषय प्रत्येक क्षेत्रीय धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में विशद रूप से विवेचित है।

2. विवाह में दूसरा विचारणीय विषय है- विवाह कैसे हो? विवाह किस विधान से हो? इस विषय पर गृह्यसूत्र हमें निर्देशित करता है तथा उन्हीं गृह्यसूत्रों के आधार पर विवाह की पद्धतियाँ बनी हैं। मिथिला में 14वीं शती की बनी विवाह पद्धति है जिसका पालन अभी तक पारम्परिक परिवारों में हो रहा है। हर क्षेत्र के लिए कुछ परिवर्तन के साथ स्थानीय पद्धतियाँ हैं, जिनमें मूल रूप से गृह्यसूत्र के निर्देशों का समावेश है।

वर्तमान में सबसे अधिक उल्लंघन इन्हीं पद्धतियों का हो रहा है, जो आधुनिक समाज के लिए चिन्तनीय है। इस उल्लंघन के कारण विवाह जो विकृतियाँ आ रहीं हैं, उन पर हमें ध्यान देना चाहिए।

इन पद्धतियों के उल्लंघन के कारण सबसे पहली समस्या आ रही है कि हम विवाह को एक प्राचीन वैदिक कर्म की अपेक्षा एक उत्सव मान बैठे हैं, उससे भी आगे बढ़कर उसे एक सिनेमा शूटिंग मानते जा रहे हैं। विवाह में प्राचीन काल में जहाँ दैवीय-मान्यता की बात थी, अलौकिक सम्बन्ध की बात थी, वहाँ आज हम केवल सामाजिक मान्यता पर जोर दे बैठे हैं। उत्सव मान लेने के कारण विवाह का समारोह पूरा का पूरा बाजारवाद के चंगुल में जा फँसा है। विवाह जहाँ शास्त्रोक्त नियत संस्कार था, वहाँ वह धन का खेल हो गया है। सामाजिक समरसता के लिए यह बहुत बड़ा खतरा उत्पन्न हो गया है। एक ओर समाज में ऐसा भी परिवार है, जो अपने जीवन भर जितने संसाधनों का उपयोग करता है, उतना संसाधन दूसरा परिवार केवल एक विवाहोत्सव में व्यय कर देता है। सामाजिक एकता तथा समरसता के लिए यह एक बहुत बड़ी खाई खोदी जा रही है, जो तथाकथित जातीय असमानता से भी अधिक खतरनाक सिद्ध होगी।

इसी उत्सव की मान्यता ने दहेज प्रथा को भयंकर रूप से विकृत बना दिया है। कन्या का पिता एक बेटी के विवाह के लिए वर्षों तक संघर्ष करता है, और वह संसाधन केवल उत्सव को समर्पित हो जाता है, वर्षों की कमाई से संचित धन एक दिन में स्वाहा हो जाता है। एक दिन के लिए विवाह-मण्डप को 'स्वर्ग से भी सुन्दर' बनाने के चक्कर में कितने परिवार का जीवन नरक बनता जा रहा है, इस पर हमें सोचना पड़ेगा, तभी हम समाज को स्वस्थ, सुखी, समरस तथा एक मजबूती दे पायेंगे। समाज स्वस्थ होगा, एक होगा, समरसता के भाव से परिपूर्ण होगा तभी हम विकसित कहलाने के अधिकारी हैं।

प्राचीनतम स्थिति- इस परिस्थिति में हमें सनातन धर्म में वर्णित विवाह के स्वरूप को दुहराने की आवश्यकता है। सनातन धर्म कहता है कि विवाह एक पवित्र संस्कार है। एक लोटा जल, एक कुश का आसन, मधुपर्क (शहद, दही तथा गुड़ का सम्मिश्रण), वर के लिए दो वस्त्र, कन्या, तथा एक गाय- इतने संसाधन जिस कन्या के पिता के पास बेटी के विवाह के लिए पर्याप्त है। कन्यादाता इतने संसाधन सौपने के बाद कह देता है- परम्परं समञ्जेथाम् यानी अब आप दोनों परस्पर सामंजस्य बैठा लें। वर कन्या को लेकर अपने घर आता था तथा अपने घर में अग्नि का स्थापना कर विधिवत् उस कन्या के साथ विवाह करता था। कन्या के पिता का इतना ही कर्तव्य था कि वह वर की अर्हणा (स्वागत-सत्कार) कर उसे कन्या का हाथ थमाकर एक गाय साथ देकर निश्चिन्त हो जाये। पद्धति में इतने ही कर्म लड़की के पिता के घर होते थे। विवाह वर के घर पर होता था।

मध्यकालीन स्थिति- बाद में कन्या के पिता के आँगन में ही ईशान कोण पर अलग से वेदी बनने लगी और बीच आंगन में स्थित मण्डप पर कन्या स्वीकार करने के बाद वर उस वेदी को अपना अधिकार-क्षेत्र समझकर विवाह की विधि सम्पन्न करने लगे। उस वेदी की सारी व्यवस्था वरपक्ष के जिम्मे होती थी। यहाँ तक कि लीपने के लिए गाय का गोबर भी वरपक्ष अपने घर से ले जाते थे। मिथिला में 14वीं शती की मूल पद्धति से जहाँ आज विवाह हो रहे हैं वहाँ यही स्थिति आज भी प्रचलित है। यह विवाह कन्या, तुला एवं मिथुन लग्न में, दिन या रात जब ये लग्न पड़े, विवाह हो सकता है। इन्हीं तीनों में से किसी एक लग्न में कन्यादान होने के बाद तुरत वर विवाह करता है। वेदी के विधानों से कन्या पक्ष को कोई लेना-देना नहीं होता है। आम की समिधा, कुश, गाय का गोबर, दूर्वा, अक्षत, पुरोहित को दक्षिणा आदि की व्यवस्था वर के पिता करते हैं। कन्यादान का समय सुनिश्चित होता है, जो अधिकतम चार घंटे का तथा कभी-कभी तो आधे घंटे का हो जाता है। उसी आधे घंटे के समय में कन्यादान कर विना किसी रुकावट का विवाह सम्पन्न हो जाता है। वर बाल कटाकर पूर्व दिन एक बार ही भोजन कर उस दिन व्रत करते हुए

विवाह सम्पन्न करते हैं। इस पद्धति में पूर्णतः समय, वैदिक कर्मों तथा आचारों का पालन होता है। उत्सव की कोई गुंजाइश ही नहीं रह जाती है। फलतः कन्याके पिता पर आर्थिक बोझ नहीं पड़ता है।

20वीं शती की स्थिति- इसके बाद की स्थिति आयी कि वेदी के विधानों तथा उसकी व्यवस्था का भार भी कन्या के पिता पर आ गया। केवल कन्या के लिए साड़ी और गहने वर के पिता लाते रहे। बीसवीं शती की इस स्थिति में वर मुण्डन नहीं कराते हैं, एकभुक्त आदि व्रत नहीं करते हैं। अधिकांश स्थानों पर वर को खिला-पिलाकर विवाह के मंडप पर बैठाया जाता है। मिथिला में भी अब अधिकांश विवाह इसी व्यवस्था से हो रहे हैं। इस व्यवस्था में मण्डप तथा विवाह का स्थान अलग-अलग न होकर सांकेतिक रूप में वेदी बना दी ती है तथा वहीं पर महिलाएँ रातभर, समय के बन्धन के विना विवाह सम्पन्न करातीं है। पुरोहित की आवश्यकता नहीं रह जाती है। इस विकृत पद्धति में रातभर का समय मिल जाता है विवाह को उत्सव का रूप देने के लिए। वह विवाह-विधि श्रौत-स्मार्त पद्धति से अनुशासित न होकर कामोत्सव का स्वरूप बन जाता है। यही से बाजारवाद का प्रवेश आरम्भ हो जाता है। कन्यापक्ष वाले देखते हैं कि वर के पिता ने कन्या के लिए कितने आभूषण दिये! उस पर चर्चा आरम्भ होती है। वर के पिता तब कन्या के पिता से दहेज की माँग पर उतर आते हैं ताकि वह अपनी ओर से कन्या के लिए वेदी पर आभूषण उपलब्ध करा सके और अपनी प्रशंसा पा सके। इसी उपर्युक्त विकृत विवाह-पद्धति में जयमाल का समावेश हुआ, उसके लिए मंच बनाये जाने लगे और सिनेमा की नकल पर फोटोग्राफी आरम्भ हुई।

21वीं शती की वर्तमान स्थिति- वर्तमान में शहर में होने वाले विवाह में तो जयमाल का मंडप आकर्षण का केन्द्र बन गया है। वही पर नाच-गान होते हैं। पंडितजी आकर कुछ शान्तिवाचन आदि मन्त्र पढ़ देते हैं, आशीर्वाद देकर चले जाते हैं। अदर किसी स्थान पर अग्नि जला दी जाती है तथा फिल्मी प्रभाव से सात फेरे लगा कर विवाह को पूर्ण मान लिया जाता है।

सप्तपदी तथा सात फेरे-

फिल्मी प्रभाव से अग्नि के सात फेरे का महत्त्व बढ़ गया है। वास्तविकता है कि इसका उल्लेख न तो किसी गृह्यसूत्र में है न ही किसी पद्धति में। गृह्यसूत्र में सप्तपदी का उल्लेख है, जिसमें वधू वर के सात सात कदम चलती है। अश्मारोहण के बाद वर कन्या को सात पद उत्तर की ओर ले जाता है और प्रत्येक कदम पर वह इस मन्त्र का पाठ करता है: **एकमिषे विष्णुस्त्वा नयतु द्वे ऊर्ज्जे विष्णुस्त्वा नयतु त्रीणि रायस्पोषाय विष्णुस्त्वा नयतु चत्वारि मयोभवाय विष्णुस्त्वा नयतु। पञ्च पशुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु। षट् ऋतुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु। सखे सप्तपदा भव सामामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु।**

1. "हे मित्र! विष्णु आपको प्रथम पग से भोजन की ओर ले जाएँ;
2. दूसरे पग से मजबूत करने के लिए;
3. तीसरे द्वारा धन के लिए;
4. चौथे द्वारा आनन्द के स्रोत के लिए;
5. पाँचवें द्वारा पशुओं के लिए;
6. छठे पग द्वारा वर्ष की छह ऋतुओं लिए;
7. और तुम विष्णु की कृपा से सातवें पग से मुझ पर अनुरक्त रहो।

वास्तविकता है कि कन्या अग्नि की परिक्रमा केवल चार बार करती है और चारों बार धान के खील से अग्नि में हवन करती है। कन्या के द्वारा हवन की प्रक्रिया को छुपाने के लिए शायद लाजाहोम तथा सप्तपदी दोनों को मिलाकर उसका रूप बदल दिया गया है, जो सात फेरा के रूप में आ प्रचलित हो गया है।

इस प्रकार, आज आवश्यकता है कि हम विवाह को एक पवित्र संस्कार मानकर उसकी प्राचीन पद्धति का अनुसरण करते हुए उसके प्रति दैवी आस्था का भाव रखें। विवाह पति-पत्नी के एक होने का अवसर है। वह केवल एक सामाजिक समझौता नहीं है। हमारे सनातन धर्म में उसे जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध माना गया है, जिसे हम तोड़ नहीं सकते हैं।

विवाह कामोत्सव नहीं है, वह सोलह संस्कारों में से एक है। इसे पवित्रतापूर्वक शुभ समय में मिनट-टू-मिनट के कार्यक्रम की तरह निभाना चाहिए। हमें यह भी सिद्धान्ततः समझना होगा कि कन्यादान कर देने के बाद कन्या के पिता की कोई जिम्मेदारी नहीं रह जाती है। सारी जिम्मेदारी वर पर जाती है।

वर्तमान परिस्थिति में कर्तव्य- आज हम जिस ओर बढ़ रहे हैं, उसमें आवश्यक है कि विवाह के दिन कार्यक्रम पूरी निष्ठा के साथ वैदिक पद्धति का पालन करते हुए किसी मन्दिर में या घर में ही पवित्रता और सादगी में करा दिया जाये। उसी दिन वहू अपनी ससुराल चली जाये। पद्धति के अनुसार चौथे दिन चतुर्थी कर्म भी परम्परानुसार हो। उसके बाद यदि ससुराल वाले चाहें तो उत्साह से भोज का आयोजन करें, जो करना हो वह करें। इसमें कन्यापक्ष वाले भी स्वेच्छा से उतासह के साथ सम्मिलित हों। विधानपूर्वक विवाह सम्पन्न हो जाने के बाद वर-वधू जैसे चाहें, फोटोग्राफी आदि करावें। इससे विवाह की पवित्रता बची रहेगी तथा कन्या और वर के पिता धन के अपव्यय के लिए बाध्य नहीं होंगे।

विवाह के प्राचीन स्वरूप और इसकी महत्ता को आज के समाज की जानकारी के लिए इस अंक की आवश्यकता थी। हमें आशा है कि इसके उदात्त स्वरूप को जानने के बाद लोग इसके प्रति आकृष्ट होंगे तथा इसकी पवित्रता बनाये रखेंगे। इससे इसके वर्तमान उत्सव वाले स्वरूप से छुटकारा मिलेगा और दहेज पर बहुत हद तक नियंत्रण होगा। विवाह में कुल खर्च घटने से कन्या के जन्म को भी लोग अभिशाप के रूप में नहीं लेंगे, कन्याभ्रूणहत्या की मानसिकता में कमी आयेगी और हमारे समाज की बहुत सारी कठिनाइयाँ दूर होंगी।

जय सनातन

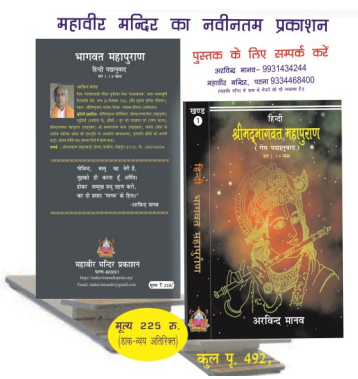

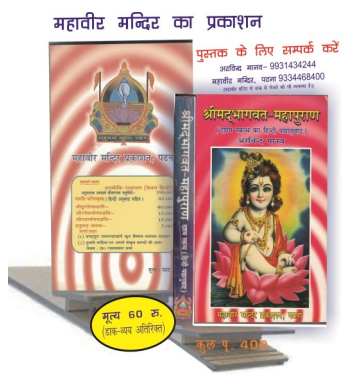

पुस्तक प्राप्ति हेतु सम्पर्क करें- 9334468400

विवाह : एक पवित्र संस्कार

श्री राधाकिशोर झा
विशेष सचिव, भारतीय प्रशासनिक सेवा, (अ.प्रा.) क्वांटम डीएनआर. एपार्टमेंट, फ्लैट सं. 305, 70 फीट बाइपास, विष्णुपुर, पकरी 35 फीट, बिहार डिजिटल वर्ल्ड के पास, द्वारकापुरी, पटना-800002

वर्णाश्रम धर्म के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य आश्रम से गृहस्थ आश्रम में प्रवेश का पहला सोपान विवाह है। विवाह के बाद नारी और पुरुष के संयोग से संतान की उत्पत्ति होती है। सनातन धर्म में विवाह की पवित्रता तथा स्थिरता के आधार पर उत्पन्न सन्तति के उत्कर्ष तथा अपकर्ष की बात कही गया है। अतः पाँच प्रकार के विवाह को ही सनातन धर्म में स्वीकृति है। इनमें भी गान्धर्व विवाह को पाँचवें स्थान पर रखा गया है। आजकल परिस्थिति बन गयी है कि जहाँ माता-पिता भी वैवाहिक सम्बन्ध तय करते हैं ब्राह्म आदि विवाह की परिस्थिति है, वहाँ भी ब्राह्म, प्राजापत्य, दैव तथा आर्ष विवाह की विधि न अपना कर पाँचवें गान्धर्व पद्धति का अनुसरण किया जाने लगा है तथा इस पद्धति में बाजारवाद प्रभावी होकर इसके रूप को बिगाड़ने लगा है। इससे दहेज-जैसी अनेक सामाजिक कुरीतियाँ विकराल रूप लेने लगी है। हमें विवाह के प्राचीन रूप को समझकर उसकी पवित्रता बनाये रखनी चाहिए। इसके लिए विवाह की प्राचीन मर्यादा को समझना अपेक्षित है।

महाभारत शान्तिपर्व में कहा गया है— **न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृह मुच्यते।**[1] अर्थात् गृहिणी ही गृह है। गृहस्थाश्रम की धुरी गृहिणी अर्थात् भार्या है। शतपथ ब्राह्मण एवं तैत्तिरीय संहिता में गृहिणी अर्थात् पत्नी को पति की अर्द्धांगिनी कहा गया है, जिसके बिना पुरुष अपूर्ण ही होता है।

अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया तस्माद्यावज्जायां न विन्दते नैव तावत्प्रजायते असर्वो हि तावद् भवति। अथ यदैव जायां विन्दतेऽथ तर्हि सर्वो भवति।[2]

अर्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नी।[3] अर्थात् पुरुष का अर्द्धभाग पत्नी है।

पुरुष गृहस्थाश्रम का आश्रय लेकर विवाह करे। गौतम धर्मसूत्र, बौधायन धर्मसूत्र एवं मनुस्मृति में आठ प्रकार के विवाह का उल्लेख है।

गृहस्थः सदृशीं भार्यां विन्देतानन्यपूर्वां यवीयसीम्।[4]

गृहस्थ अपने समान पहले वाग्दान द्वारा भी किसी को न दी गई तथा अपने से कम आयु वाली कन्या से विवाह करें।

चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्य चेह हिताहितान्।
अष्टाविमान् समासेन स्त्रीविवाहान्निबोधत॥[5]

1. महाभारत शान्तिपर्व : 144.66
2. शतपथ ब्राह्मण : 5.2.1.10.
3. तैत्तिरीय संहिता : 6.1.8.5
4. गौतम धर्मसूत्र : 4.1
5. मनुस्मृति : 3.20

मरने पर तथा इस लोक में चारो वर्णों के हिताहित (भला-बुरा) करनेवाले स्त्रियों के आठ प्रकार के विवाहों को संक्षेप में सुनो।

ब्राह्मो दैवस्तथार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः।
गान्धर्वो राक्षसच्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥[6]

ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और आठवाँ अधम पैशाच है।

(1) ब्राह्म विवाह

ब्राह्मो विद्याचारित्रबन्धुशीलसम्पन्नाय दद्यादाच्छाद्या-लङ्कृताम्।[7]

विद्या (वेद विद्या), उत्तम आचरणवाले, बन्धु, शील सम्पन्न वर को दो वस्त्रों से सजायी गई तथा आभूषण से अलंकृत कन्या प्रदान करने पर ब्राह्म विवाह कहलाता है।

श्रुतिशीले विज्ञाय ब्रह्मचारिणेऽर्थिने कन्या दीयते स ब्राह्मः।[8]

श्रुति एवं शील युक्त ब्रह्मचारी याचक वर को कन्या दिया जाता है तो वह ब्राह्म विवाह कहलाता है।

ब्राह्मे विवाहे बन्धुशीललक्षणसम्पन्नश्रुतारोग्याणि बुद्ध्वा प्रजां सहत्वकर्मेभ्यः प्रतिपादयेच्छक्ति-विषयेणाऽलंकृत्य।[9]

ब्राह्म विवाह में वर के कुल, आचरण, धर्म में आस्था विद्या, स्वास्थ्य के विषय में जानकारी प्राप्त कर अपनी शक्ति के अनुसार कन्या को आभूषण से अलंकृत कर प्रजा की उत्पत्ति तथा एक साथ धर्म-कर्म करने के प्रयोजन से कन्या प्रदान करें।

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम्।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः॥[10]

वेद पढ़े हुए सदाचारी वर को स्वयं बुलाकर, उसकी पूजाकर और वस्त्राभूषणदि से दोनों (कन्या-वर) को अलंकृत कर कन्यादान करना धर्मयुक्त ब्राह्म विवाह है।

हमने गौतम, बौधायन, आपस्तम्ब एवं मनु के मतों को उपस्थापित किया है। इन चारो मतों सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वर पढ़ा लिखा विद्वान् हो, आचारवान् हो, शीलवान् हो। दोनों पक्षों के बीच कोई लेन-देन नहीं हो। कन्या एवं वर वस्त्र एवं अलंकार से आच्छादित कर यह क्रिया सम्पन्न किया जाए। यह विवाह सर्वोत्तम कहलाता है।

(2) दैव विवाह

अन्तर्वेद्यृत्विजे दानं दैवोऽलंकृत्य।[11]

(यज्ञ के समय) वेदी पर (दक्षिणा के अवसर पर) यज्ञ कर्म करानेवाले ऋत्विज को आभूषण से अलंकृत करके कन्या प्रदान करने पर दैव विवाह कहलाता है।

यज्ञे तु विततते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते।
अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते॥[12]

ज्योतिष्टोमादि यज्ञ में विधिपूर्वक कर्म करते हुए ऋत्विज के लिए अंलकृत कन्या का दान करने को (मुनि लोग) धर्मयुक्त 'दैव' विवाह कहते हैं। यह विवाह अप्रचलित हो चला है। अतः अनुकरणीय नहीं है।

(3) प्राजापत्य विवाह

आच्छाद्याऽलंकृत्य 'एषा सहधर्म चर्यताम्' इति प्राजापत्यः।[13]

कन्या को वस्त्र से आच्छादित एवं अंलकार से आभूषित कर 'यह तुम्हारी भार्या है, इसके साथ

6. मनुस्मृति : 3.21
7. गौतम धर्मसूत्र : 1.4.4
8. बौधायन धर्मसूत्र : 1-11-20-2
9. आपस्तम्बधर्म-सूत्र : 2.11.17
10. मनुस्मृति : 3. 27
11. गौतम धर्मसूत्र : 4.7
12. मनुस्मृति : 3.28
13. बौधायन धर्मसूत्र- 1-11-20-3

धर्माचरण करो', ऐसा कहकर प्रदान किया जाता है तो वह प्राजापत्य विवाह कहलाता है।

सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च।
कन्या प्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः॥[14]

'तुम दोनों मिलकर धर्माचरण करो' ऐसा वचन कहकर तथा वस्त्रालंकारादि के पूजन कर कन्यादान करना 'प्राजापत्य' विवाह कहा गया है।

(4) आर्ष विवाह—

"पूर्वां लाजाहुतिं हुत्वा गोमिथुनं कन्यावते दत्त्वा ग्रहणमार्षः।"[15]

"आर्षे गोमिथुनं कन्यावते दद्यात्।"[16]

"एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादाय धर्मतः।"

"कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते।"[17]

वर से एक गौ मिथुन (गाय और बैल का जोड़ा) या दो गौ मिथुन (दो गाय एवं बैल का जोड़ा) लेकर विधिवत् कन्यादान करना आर्ष विवाह कहलाता है। यह अप्रचलित है।

(5) गान्धर्व विवाह—

"सकामेन सकामायां मिथस्संयोगो गान्धर्वः।"[18]

प्रेम करनेवाला पुरुष का यदि प्रेम करनेवाली कन्या से संयोग हो तो वह गांधर्व विवाह कहलाता है।

इच्छयान्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः॥[19]

कन्या एवं वर के इच्छानुसार परस्पर स्नेह से संयोग (आलिंगनादि) या मैथुन होना गांधर्व विवाह कहलाता है।

बौधायन ऋषि का मत है कि कुछ आचार्य सभी वर्णो के लिए गांधर्व विवाह की अनुमति देते हैं क्योंकि वह प्रेम के ऊपर आश्रित है।

"गान्धर्वमप्येके प्रशंसन्ति सर्वेषां स्नेहानुगतत्वात्।"[20]

मन्तव्य— आजकल प्रायः गान्धर्व विवाह के दृष्टान्त दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

(6) आसुर विवाह—

धनेनोपतोष्याऽऽसुरः।[21]

कन्यावाले को धन से संतुष्ट करके विवाह करना आसुर विवाह है।

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तितः।
कन्याऽऽप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते॥[22]

कन्या के पिता या सम्बन्धियों को कन्या के लिए धन देकर स्वेच्छा से कन्या का ग्रहण वर द्वारा किया जाना आसुर विवाह कहलाता है। कौटिल्य ने शुल्क ग्रहण कर होनेवाले विवाह को आसुर कहा है।[23]

(7) राक्षस विवाह—

प्रसह्याऽऽदानाद्राक्षसः।[24]

प्रसह्याऽऽदानाद्राक्षसः।[25]

बलपूर्वक कन्या का अपहरण कर विवाह करना राक्षस विवाह कहलाता है।

14. मनुस्मृति 2-30
15. बौधायन धर्मसूत्र : 1-11-20-4
16. गौतम धर्मसूत्र : 1.4.6
17. मनुस्मृति : 3.29
18. बौधायन धर्मसूत्र 1.11.20.6
19. मनुस्मृति : 3.32
20. बौधायन धर्मसूत्र : 1.11. 16
21. बौधायन धर्मसूत्र : 1.11.7
22. मनुस्मृति : 3-32
23. कौटिल्य : अर्थशास्त्र : 3.2.7. —शुल्कदानादासुरः।
24. बौधायन धर्मसूत्र : 1.11. 8
25. गौतम धर्मसूत्र : 1.4.10

(8) पैशाच विवाह–

सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वोपयच्छेदिति पैशाचः।[26]

सोती हुई, नशीली वस्तु से माती हुई या प्रमत्त बनी हुई कन्या के साथ संगम पैशाच विवाह कहलाता है।

सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचः प्रथितोऽष्टमः॥[27]

जहाँ सोती हुई, (मदिरा) मतवाली अथवा असावधान कन्या के साथ एकान्त में संग किया जाता है वह विवाहों में पापिष्ठ आठवाँ पैशाची विवाह है। वस्तुतः राक्षस विवाह एवं पैशाच विवाह सभ्य समाज के लिए नहीं है। यह स्वीकार्य नहीं माना गया है।

आजकल वर पक्ष कन्या पक्ष से धन ग्रहण कर कन्या एवं वर का विवाह की अनुमति देते हैं। यह भी एक प्रकार का आसुर विवाह है।[28] यह विवाह प्रशंसनीय नहीं है। आसुर, राक्षस एवं पैशाच विवाह निन्दनीय है इससे उत्पन्न संतान निन्दित कार्य में संलग्न पाये जाते हैं। इसलिए निन्दित विवाह का त्याग करना चाहिए।

अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा।
निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान्विवर्जयेत्॥[29]

मंतव्य– सनातन धर्म में विवाह का उद्देश्य धर्म की साधना है। सनातन धर्म का स्तम्भ गृहस्थ धर्म है जिसपर ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास टिका है। इतना ही नहीं, सच कहिए तो गृहस्थ ही धर्म का प्रतिनिधि है क्योंकि वही देव, पितर, ऋषि, मनुष्य एवं मनुषयेतर अन्य प्राणियों को धारण पंच महायज्ञों के द्वारा करता है। 'धारणात् धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजा' का कथन गृहस्थाश्रम में ही चरितार्थ होता है। गृहस्थाश्रम की धुरी पत्नी है जिसका उद्देश्य ही पति के साथ मिलकर धर्म का पालन। गृहस्थ काम प्रधान नहीं है प्रत्युत यह धर्म प्रधान है। काम धर्माधीन है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि–'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।'[30] अर्थात् धर्मानुकूल कामना हूँ। फलस्वरूप गृहस्थाश्रम में धर्मानुष्ठान हेतु पत्नी की आवश्यकता है एतदर्थ ब्राह्म या प्रजापत्य विवाह ही उपयुक्त है। गंधर्व विवाह में प्रेम की प्रधानता है परन्तु सदा यह ध्यान रहना चाहिए कि दोनों का सम्बन्ध उन्मुक्त काम वासना की पूर्ति हेतु नहीं, प्रत्युत विश्व के कल्याण के लिए ही (लोक संग्रह) उनका पवित्र सम्बन्ध है।सनातन धर्म एक साधना पद्धति है जिसमें हमें उस एकत्व से मिलने की यात्रा है। यह ध्यान सदा रहना चाहिए। तभी हम विवाह के उद्देश्य को समझ सकेंगे। अतः इस दृष्टिकोण से आसुर, राक्षस एवं पैशाच विवाह गर्हित है अनुकरणीय नहीं है।

> **"गृहस्थाश्रम की धुरी पत्नी है जिसका उद्देश्य ही पति के साथ मिलकर धर्म का पालन। गृहस्थ काम प्रधान नहीं है प्रत्युत यह धर्म प्रधान है। काम धर्माधीन है।"**

दाम्पत्य धर्म

सनातन धर्म की धूरी गृहस्थाश्रम है। जिसका आधारभूत प्रशिक्षण ब्रह्मचर्याश्रम में दिया जाता है। ब्रह्मचर्य के नाम से ही स्पष्ट है कि इसका उद्देश्य जीवन में ब्रह्म की अनुभूति करना है। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि **ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति।**[31]

26. बौधायन धर्मसूत्र : 1.11.9.
27. मनुस्मृति : 3.34
28. कौटिल्य अर्थशास्त्र : 3.2.7.
29. मनुस्मृति : 3.42
30. गीता : 7.11.
31. छान्दोग्य उपनिषद् : 8.4.3.

अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। गृहस्थाश्रम में भी इस उद्देश्य को सदैव याद रखनी है। गृहस्थाश्रम रमण स्थल नहीं, प्रत्युत तपःस्थली है। पत्नी के साथ रहते हुए ब्रह्मचर्य के व्रत का पालन। यह अद्भुत है। यह वही कर सकता है जो धीर है और जितेन्द्रिय है।[32]

ब्रह्मचर्यव्रत समाप्ति के उपरान्त आचार्य अन्तेवासियों को उपदेश देते हैं– **"प्रजातन्तुं मा व्यवेत्छेत्सीः** प्रजातन्तु का विच्छेद मत कर अर्थात् प्रजा का विस्तार कर। इसके साथ यह भी उपदेश देते हैं– **"धर्मं चर"** अर्थात् धर्म का अनुपालन कर। इसके अतिरिक्त और कतिपय उपदेश हैं जिनका अनुपालन पति-पत्नी को साथ में मिलकर करना है। गृहस्थाश्रममय शकट के दो चक्के हैं– पति और पत्नी। हमने विवाह के प्रसंग में देखा है कि वर को कन्या धर्म पालन के लिए प्रजापत्य एवं ब्रह्म विवाह में दिया जाता है। यही हमारे विवाह की विशिष्टता हैं अन्य धर्मों में विवाह एक संविदा है, परन्तु सनातन धर्मो में विवाह धर्मपालन के लिए है, उन्मुक्त कामवासना की पूर्ति हेतु नहीं।

ऋग्वेद के दशम मण्डल के 85 वें सूक्त में कहा गया है, यह कन्या गार्हपत्य धर्म के अनुपालन के लिए देवता द्वारा प्रदान की जाती है–

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय
हस्तं मया जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरंध्रि-
र्मह्यं त्वामदुर्गार्हपत्याय देवा॥[33]

हे वधू! मैं तुम्हारे सौभाग्य के लिए तुम्हारा हाथ पकड़ रहा हूँ। तुम मुझे पति के रूप में स्वीकार कर मेरे साथ ही वृद्धावस्था प्राप्त करोगी, अर्थात् हमलोग वृद्धावस्था तक एक साथ इसी तरह से रहेंगे। भग, अर्यमा, सविता, पुरन्धि (पूषा)– ये सब देवगण गृहस्थाश्रम चलाने के लिए तुम्हें मुझे सौंप रहे हैं।

विवाह काल में वर-वधू प्रार्थना करते है।

समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ॥[34]

समस्त देवता हम दोनों (वर-वधू) के मनों को भली प्रकार मिला दे। अर्थात् (हमदोनों) के दुःख आदि कष्टों को दूर कर (हमदोनों को) लौकिक एवं वैदिक विषयों में प्रकाश युक्त करें। आप देवी हम दोनों के हृदयों को मिला दें तथा वायु हमदोनों के हृदय को मिला दे अर्थात् हम दोनों की बुद्धियों को परस्पर अनुकूल करें और भगवान् ब्रह्मा हम दोनों को संयुक्त करें। फल देनेवाली सरस्वती हमदोनों को परस्पर संयुक्त करे।

वर-वधू पुनः प्रार्थना करते हैं–

इहैव स्तं मा वि योष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे॥[35]

हम दोनों एक साथ यहीं इस लोक में रहें, हमलोग कभी अलग नहीं हों और इसी तरह से पूरी आयु का उपभोग करें। हमलोग घर में नाती-पोतों के बीच सुखपूर्वक रहें।

अतः गार्हपत्य धर्म का निर्वाह पति और पत्नी को मिलकर करना है। धर्म निर्वहन में दोनों एक दूसरे के

32 महाभारत : शान्तिपर्व, 221.11- भार्यां गच्छन् ब्रह्मचारी ऋतौ भवति वै द्विजः। ऋतवादी भवेन्नित्यं ज्ञाननित्यश्च यो नरः॥ जो केवल ऋतुकाल (ऋतुस्नान के बाद 16 दिनों के भीतर) में ही पत्नी के साथ समागम करता है, सदा सत्य बोलता और नित्यज्ञान में स्थित रहता है, वह द्विज सदा ब्रह्मचारी ही होता है।

33. ऋग्वेद : 10.85.36.

34. ऋग्वेद : 10.85.47.

35. ऋग्वेद : 10.85.42.

पूरक हैं, स्वतंत्र नहीं। अतः गौतम ऋषि ने कहा— अस्वतन्त्रा धर्मे स्त्री।[36] पत्नी उद्दाम काम वासना की पूर्ति हेतु साधन नहीं है, प्रत्युत वह धर्मचारिणी है, सहधर्मिणी है, सखा है।[37] वह कंधे से कंधे मिलाकर गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यों का सम्पादन करती है। पत्नी पति को देवता रूप में और पति पत्नी को देवी के रूप में समझे।[38] दोनों का मन समान हो, दोनों की बुद्धि समान हो, दोनों का ध्येय समान हो ऐसी आर्ष प्रार्थना है।

अथर्ववेद में उल्लेख है—

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि योष्ट
संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत
सध्रीचीनान् व समनस्कृणोमि।[39]

आप (दोनो) छोटे-बड़ों का ध्यान रखकर व्यवहार करते हुए समान विचार रखते हुए तथा समान कार्य करते हुए पृथक् न हो। आप एक दूसरे के प्रेमपूर्वक वार्तालाप करते हुए आओ। हे मनुष्यों! मैं भी आपको एक कार्यों में प्रवृत्त होनेवाले करता हूँ।

अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः।
एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः॥[40]

मरण पर्यन्त पति पत्नी में परस्पर किसी भी प्रकार के धर्म का उल्लंघन और विच्छेद न हो पाये। संक्षेप में स्त्री-पुरुष का सर्वप्रमुख धर्म है।

अनुव्रतः पितुः पुत्रे मात्रे भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमती वाचं वदतु शान्ति वाम्॥[41]

पुत्र पिता के अनुकूल कर्म करनेवाला हो, माता पुत्र आदि के साथ एक मन वाली हो, भार्या पति से मधुरता भरी सुखदायिकी वाणी बोले।

अथर्ववेद का तीसरे काण्ड का 30वाँ सूक्त सामनस्य सूक्त कहलाता है। ये हरेक प्राणी के लिए अनुपालनीय है। अतः दम्पती के लिए तो और आवश्यक है। दम्पती के बीच **अन्यो अन्यमभिहर्यन्त वत्सं जातमिवाघ्न्या।**[42] जैसे उत्पन्न हुए बछड़े के गाय स्नेह करती है उसी प्रकार पति-पत्नी एक दूसरे की कामना करें या प्रेम करें।

यदा भर्ता च भार्या च परस्परवशानुगौ।
तथा धमार्थकामानां त्रयाणामपि संगतम्॥[43]

जब भर्ता और भार्या परस्पर अनुगामी होते हैं तब वहाँ धर्म, अर्थ एवं काम की सम्यक् प्राप्ति होती है।

संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥[44]

जिस कुल में स्त्री से पति प्रसन्न रहता है और उसी प्रकार पति से पत्नी प्रसन्न रहती है वहाँ निश्चय करके अचल कल्याण होता है।

नास्ति भार्या समो बन्धुर्नास्ति भार्या समा गतिः।
नास्ति भार्यासमो लोके सहायो धर्मसंग्रहे।
यस्य भार्या गृहे नास्ति साध्वी च प्रियवादिनी।
अरण्यं तेन गंतव्यं यथारण्यं तथा गृहम्॥[45]

संसार में भार्या के समान कोई बन्धु नहीं है, स्त्री के समान कोई आश्रय नहीं है और भार्या के समान धर्म संग्रह में सहायक भी दूसरा कोई नहीं है।

36 गौतम धर्मसूत्र : 2.8.1.
37 ऐतरेय ब्राह्मण : 33.1. "सखा ह जाया।"
38. द्रष्टव्य— भागवत : 7.11.28; मनुस्मृति : 3.26
39. अथर्ववेद : 3.30.5
40. मनुस्मृति 8.101
41. अथर्ववेद : 3.30.2
42. अथर्ववेद : 3.30.1
43. मनुस्मृति : 3.61 (2); मार्कण्डेय पुराण : 21.69 तुलनीय- महाभारत : वनपर्व, 313.102.
44. मनुस्मृति : 3 : 60
45. महाभारत : शान्तिपर्व : 144 : 16 : 17

जिसके घर में साध्वी और प्रिय वचन बोलनेवाली भार्या नहीं है, उसे तो वन में चले जाना चाहिए, क्योंकि उसके लिए जैसा घर है, वैसा ही वन।

न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।
गृहं तु गृहिणीहीनमरण्यसदृशं मतम्॥[46]

नास्ति भर्तृसमो नाथो नास्ति भर्तृसमं सुखम्।
विसृज्य धनसर्वस्वं भर्ता वै शरणं स्त्रियाः॥[47]

स्त्री के लिए पति के समान कोई रक्षक नहीं है और पति के तुल्य कोई सुख नहीं है। उसके लिए तो धन और सर्वस्व को त्याग कर पति ही एकमात्र गति है।

भार्यावन्तः क्रियावन्तः सभार्या गृहमेधिनः।
भार्यावन्त प्रमोदन्ते भार्यावन्तः श्रियान्विताः॥[48]

जिनकी पत्नी हैं, वे ही यज्ञ आदि कर्म कर सकते हैं। सपत्नीक पुरुष ही सच्चे गृहस्थ हैं। पत्नी वाले पुरुष सुखी और प्रसन्न रहते हैं और जो पत्नीयुक्त हैं वे मानो लक्ष्मी से सम्पन्न हैं।

अर्द्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्यामूलं त्रिवर्गस्य भार्यामूलं तरिष्यतः॥[49]

भार्या पुरुष का आधा अंग है। भार्या उसका सबसे उत्तम मित्र है। भार्या धर्म, अर्थ और काम का मूल है और संसार के सागर को पार करने की इच्छा रखने वालों के लिए भार्या ही प्रमुख साधन है।

वेद, महाभारत और मनु के उल्लिखित उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि गृहस्थाश्रम में दम्पति एक दूसरे के लिए समर्पित होते हैं। दो प्राण परन्तु एक मन होता है। लक्ष्य होता धर्म की सिद्धि। धर्म एक साधन है। धर्मानुसरण से चित्त की शुद्धि होती है तथा तब मोक्ष हस्तामलकवत् होता है।

***

46. महाभारत : शान्तिपर्व : 144.6
47. महाभारत : शान्तिपर्व : 148.7
48. महाभारत आदिपर्व : 74.42
49. महाभारत : आदिपर्व : 74.41.

'कन्यादान' शब्द का वास्तविक अर्थ

दान शब्द का अर्थ है- देना। यह दान दो प्रकार का होता है1. स्वत्वनिवृत्तिपूर्वक, यानी जिसमें दान देने वाले का अधिकार समाप्त हो जाता हो। 2. स्वत्वपूर्वक, अर्थात् जिस दान में अपना जो अधिकार है वह बरकरार रहे। विवाह में कन्यादान दूसरे प्रकार का दान है जिसमें स्वत्व का त्याग नहीं होता है अर्थात् माता-पिता, भाई आदि जो कन्या के मायके वाले होते हैं उनके साथ जो सम्बन्ध पूर्व में है, वह विवाह के बाद भी रहता ही है। अतः यह स्वत्वनिवृत्तिपूर्वक दान नहीं है। पारम्परिक रूप से कन्यादान में वाक्य व्यवहार होता है- "पत्नीत्वेन अहं सम्प्रददे" यानी आपको पत्नी के रूप में दान कर रहा हूँ। इससे पति का कन्या पर अधिकार केवल पत्नी के रूप में होता है, अन्य किसी रूप में नहीं। आजकल इस कन्यादान शब्द की गलत व्याख्या कर सनातन परम्परा पर आघात पहुँचाया जा रहा है।

विवाह : एक दृष्टि

विद्यावाचस्पति महेश प्रसाद पाठक
"गार्ग्यपुरम्" श्रीसाईं मन्दिर के पास, बरगण्डा, पो- जिला-गिरिडीह, (815301), झारखण्ड, Email: pathakmahesh098@gmail.com

यद्यपि प्राकृतिक रूप से कोई भी पुरुष किसी भी स्त्री से सम्पर्क कर पशुवत् संतान उत्पन्न करने के लिए सक्षम है किन्तु सभ्य तथा उन्नत समाज के लिए वर एवं कन्या का वैध चयन आवश्यक होता है तथा विवाह के उपरान्त उस सम्बन्ध को निभाना होता है। यही सनातन धर्म का विवाह सम्बन्धी सिद्धान्त है। सनातन धर्म में विवाह केवल सामाजिक समझौता नहीं दैवीय संयोग है। इसलिए स्मृतिकारों ने स्पष्ट निर्देश किया है कि वर तथा कन्या में किसी प्रकार का रक्त सम्बन्ध/सपिण्डता न हो। "सन्निकट सपिण्डता में विवाह कार्य क्यों वर्जित है इसकी व्याख्या में अनेक जीवविज्ञानी, मानवशास्त्री भी आगे आने लगे हैं और यह सोचने के लिये बाध्य भी हैं कि हमारे ऋषि-महर्षियों ने इन सूक्ष्म अनुवांशिकी गणना का पता हजारों वर्ष पहले ही ज्ञात कर लिया था।" विवाह कहाँ करें इसकी व्याख्या के साथ विवाह कैसे करें यह भी विवेचनीय हो जाता है। गृह्यसूत्रों में इसकी विधि दी गयी है, कुछ स्थानीय लोकाचार भी विवाह में हैं, जैसे सिन्दूर का उल्लेख किसी गृह्यसूत्र में नहीं है। इन सब तथ्यों को समझने के लिए प्रस्तुत है यह शोधपूर्ण आलेख।

चार आश्रमों (ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम एवं संन्यास आश्रम) में द्वितीय वह आश्रम है- जिसमें ब्रह्मचर्य रहकर गुरु के सानिध्य में जो विद्याएँ सीखी जाती हैं, उन विधाओं की अनुभूति, पितृ-ऋण विमोचनार्थ एवं संतति की प्राप्ति इसी दूसरे आश्रम अर्थात् गृहस्थाश्रम में होती है। यह आश्रम धर्माचरणपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए, सेवाभाव में संलग्न रहते हुए, आत्मोन्नति के साधनों को खोजने, पवित्र-प्रेम और धर्मनिष्ठ बन परम-तत्त्व की प्राप्ति का समय होता है। इसलिये विवाह-संस्कार की महत्ता के विषय में विद्वानों का कहना है कि यह प्रेम, सुखमय, सरल, स्थिर, त्याग, तप, सेवा, संयम, सदाचार, सर्वभूत कल्याणकामना, सविनय रहकर समस्त दुर्गुणों से दूर रहकर पवित्रतम जीवन बिताने का क्षण है। अतः मुख्य षोडश संस्कारों में विवाह को भी एक श्रेष्ठ संस्कार माना जाता है। संस्कार-विमर्शक प्रधान ग्रन्थों में अलग-अलग नामावलियों के साथ-साथ इनकी संख्या में भी विषमता देखी जा सकती है,जैसे- आश्वलायन गृह्यसूत्र में- दस संस्कारों का समावेश है, उसी प्रकार बौधायन गृह्यसूत्र में तेरह, पारस्कर गृह्यसूत्र में तेरह, वाराह गृह्यसूत्र में तेरह, वैखानस गृह्यसूत्र में अट्ठारह, गौतम धर्मसूत्र में चालीस, अंगिरा में पच्चीस, व्यास निर्दिष्ट संस्कार में सोलह संस्कार बतलाये गये हैं। गृहस्थाश्रम ही वह प्रवेशद्वार है जिसमें स्त्री-पुरुष के साहचर्य एवं दोनों के धर्माचरण की आधार भूमि भी तैयार होती है। संस्कार का अर्थ

ही है होता है समस्त दोषों को नाश करने करने वाला एवं सद्गुणों का जन्म देने वाला।

विवाह के लिये हमारे ग्रन्थों में विविध शब्द प्रयुक्त हुए हैं, जैसे-

1. **'उद्वाह'**- कन्या को ऊपर ले जाना, कन्या को उसके पितृगृह से उच्चता के साथ ले जाना।
2. **'विवाह'**- विशिष्ठ प्रयोजन से कन्या को ले जाना अथवा अपनी स्त्री बनाने के लिये ले जाना।
3. **'परिणय'** या **'परिणयन'**- किसी के साथ परिक्रमा करना या अग्नि की प्रदक्षिणा करना।
4. **'उपयम'**- सन्निकट ले आना।
5. **'पाणिग्रहण'**- हाथ पकड़ना या कन्या का हाथ पकड़ना।

यद्यपि ये सभी शब्द विवाह-संस्कार को इंगित करते हैं, लेकिन इनका शास्त्रों में अलग-अलग प्रयोग देखने को मिलता है। वेद भाष्यकार आचार्य सायण ने 'ऐतरेय' ब्राह्मण का भाष्य करते हुए विवाह शब्द की निरुक्ति इस प्रकार से की है-

'तदिदं विपर्यासेन सम्बन्धनयनं विवाहः'[1]

परस्पर विरुद्ध स्वभाव के दो मौलिक शक्तियों का विश्वकल्याण उद्देश्य से अनन्य सम्बन्धस्थापन ही 'विवाह' है। महर्षि याज्ञवल्क्य का कहना है-

अविलुप्तब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्।
अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम्॥[2]

'गृहस्थ बनने के लिये अपने मन के अनुरूपा, भिन्नगोत्रीया, अपने से अल्पवयस्का एवं अनन्यपूर्विका कन्या के साथ पाणिग्रहण करे।' गृहस्थाश्रम में ही देव, ऋषि एवं पितृ इन तीनों ऋणों का शोधन सम्भव है। इन ऋणों से छुटकारा पाने के बाद ही व्यक्ति मुक्तिमार्ग का पथिक बनता है। कहा गया है एक सद्गृहस्थ स्वाध्याय के द्वारा ऋषिऋण, यज्ञादि के द्वारा देवऋण तथा पुत्रोत्पत्ति के द्वारा पितृऋण से मुक्त होते हैं। ऋग्वेद[3] के अनुसार विवाह का उद्देश्य या गृहस्थ होकर देवों के लिये यज्ञ करना तथा वंश-रक्षा करना है।

मनुजी का निर्देश है कि विवाह गृहस्थाश्रम का पवित्र एवं प्रमुख संस्कार है, इस संस्कार के तीन प्रमुख उद्देश्य हैं-

1. असंस्कृत प्रवृत्तियों का निरोध,
2. स्वस्त्री से उत्पन्न पुत्र के द्वारा वंशरक्षा एवं
3. धर्मानुशासन में रहते हुए भगवत्प्रेम का अभ्यास,
4. पति-पत्नी को धार्मिक कृत्यों के योग्य बनाना।

ब्रह्मचारी अपने गुरु द्वारा शिक्षित एवं यथाविधि समावर्तनव्रत का स्नान कर (विद्याध्ययन की समाप्ति पर अपने घर लौटने के समय दीक्षान्त समारोह सम्पन्न कर गुरु द्वारा गृहस्थाश्रम जाने की अनुमति मिलना) सुलक्षणा एवं सवर्ण कन्या का पाणिग्रहण करे।

गुरूणानुमतः स्नात्वा समवृतो यथाविधि।
उद्वहेत द्विजो भार्या सवर्णा लक्षणान्विताम्॥[4]

पति ही पत्नी के भीतर गर्भरूप में प्रवेश कर पुत्ररूप में जन्म लेता है। यही जन्म देने वाली स्त्री (जाया) का जायात्व है। ऐसा ही कथन ऐतरेय-ब्राह्मण, 33.1 का है। इसप्रकार से उत्पन्न सन्तान या संतति अपने पूर्वपुरुषों का उद्धार करने में सक्षम होती है। पुत्र 'पुत्' नामक नरक से पिता का त्राण करता है, इसलिये मनुष्य पुत्र से पुण्यलोकों पर विजय पाता है, पौत्र से अक्षयसुख का भागी बनता है तथा पौत्र के पुत्र से प्रपितामहगण आनन्द के भागी होते हैं। महाभारत का कथन है-

1 सायणाचार्य, ऐतरेय ब्राह्मण, 19.5 में इमौ वै लोकों सहास्ताम् इत्यादि की व्याख्या
2 याज्ञवल्क्य स्मृति : 1.3.52
3 ऋग्वेद : 10.85.36, 5.3.2, 3.53.4
4 मनुस्मृति -3.4

सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रजावती।
सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता॥
अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः॥
भार्यावन्तः क्रियावन्तः सभार्या गृहमेधिनः।
भार्यवन्तः प्रमोदन्ते भार्यावन्तः श्रियान्विताः॥[5]

'वही भार्या है जो गृहकार्य में दक्ष हो, जो संतानवती हो, जो अपने पति को प्राणों के समान प्रिय मानती हो और जो पतिव्रता हो। भार्या मनुष्य का आधा अंग है। भार्या उसका सबसे अच्छा मित्र हैं, भार्या धर्म, अर्थ और काम का मूल है और संसार-सागर से तरने की इच्छा वाले पुरुष के लिये प्रमुख साधन है। जिनके पत्नी हैं वे ही यज्ञ आदि कर्म कर सकते हैं, सपत्नीक पुरुष ही सच्चे गृहस्थ हैं। पत्नी वाले पुरुष सुखी और प्रसन्न रहते हैं और जो पत्नी से युक्त हैं; वे मानो लक्ष्मी से सम्पन्न हैं।'

शतपथ ब्राह्मण, 5.2.1.10 का कहना है- पत्नी पति की अर्धांगिनी है, अतः जबतक व्यक्ति विवाह नहीं करता, जबतक सन्तानोत्पत्ति नहीं करता, तबतक वह पूर्ण नहीं है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2.5.11.12 का कहना है पत्नी के गर्भवती होने पर दूसरी पत्नी ग्रहण करने तथा धार्मिक कृत्य करने में मना ही है।

भारद्वाज गृह्यसूत्र (1.11)के अनुसार किसी कन्या से विवाह करते समय इन चार बातों का ध्यान रखना चाहिये- धन, सौन्दर्य, बुद्धि एवं कुल। अगर इन चारों में से धन न मिले तो चिन्ता नहीं करनी चाहिये और इसके उपरान्त सौन्दर्य की। लेकिन बुद्धि एवं कुल में किसको महत्ता मिलनी चाहिये- इसपर मतभेद भी देखे जा सकते हैं। किसी ने कुल को तो किसी ने बुद्धि को महत्तर कहा। वर एवं वधु की आयु क्या होगी इस विषय पर भी विभिन्न सूत्रों, धर्मशास्त्रकारों के मत में एकता नहीं दिखती, लेकिन इन्होंने इतना अवश्य कहा है कन्या की आयु अपेक्षाकृत कम ही होनी चाहिये।

सपिण्डता का निषेध

विवाह के विषय पर एक और सामान्य नियम का पालन किया जाता है कि कन्या अपनी ही जाति (वर्ण) की हो। इसप्रकार के विवाह को अन्तर्विवाह (इन्डोगैमी) कहा जाता है। लेकिन जब एक वर्ण के लोग किसी अन्य या बाहरी वर्णों में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करे तो इसे बहिर्विवाह (एक्सोगैमी) कहा जाता है।

ऐसे वैवाहिक सम्बन्धों को विस्तार देते हुए इनदोनों के बीच अब सपिण्डता की भी बातें आती हैं। हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र, 1.19.2, गोभिलगृह्यसूत्र, 3.4.4 एवं आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2.5.11.14 के अनुसार अपने ही गोत्र से कन्या नहीं चुननी चाहिये।

एक और बात गोभिल (3.4.5), मनु (3.5) ने कही है कि कन्या सपिण्ड नहीं होनी चाहिये। सात पीढ़ियों के उपरान्त पिता की और पाँच पीढ़ियों के उपरान्त माता की ओर सपिण्ड में कोई प्रतिबन्ध नहीं रखते।

व्यासस्मृति ने भी सगोत्र विवाह करने से तो मना किया ही है, पुनः कहा है उस कन्या से भी जो जिसकी माता और वर के गोत्र के समानता हो- विवाह नहीं करना चाहिये।

धर्मसूत्रों ने सवर्ण विवाह पर ही जोर दिया है तथा असवर्ण विवाह की भर्त्सना भी की है।[6] असवर्ण विवाह से भी विभिन्न उपजातियाँ उत्पन्न होती हैं। महाभारत जैसे बृहद् ग्रन्थों में विभिन्न जातियों-उपजातियों की चर्चा, उनकी उत्पत्ति, अनुलोम-विलोम विवाह आदि की विस्तृत विवेचना मिलती है।

5 महाभारत आदिपर्व -74.40-42

6 आपस्तम्बधर्मसूत्र 2.6.13.1

सपिण्ड विवाह में तीन बातें स्पष्टतः सामने आती है-

1. विवाह,

2. वसीयत तथा

3.अशौच (जन्म-मरण पर अपवित्रता)।

सपिण्डता के सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य ने सीमाओं का निर्धारण करते हुए स्पष्ट किया है कि पाँचवीं पीढ़ी में माता के कुल में तथा सातवीं पीढ़ी में पिता के कुल में सपिण्डता की अन्तिम सीमा मानी जानी चाहिये।

सन्निकट सपिण्डता में विवाह कार्य क्यों वर्जित है इसकी व्याख्या में अनेक जीवविज्ञानी, मानवशास्त्री भी आगे आने लगे हैं और यह सोचने के लिये बाध्य भी हैं कि हमारे ऋषि-महर्षियों ने इन सूक्ष्म अनुवांशिकी गणना का पता हजारों वर्ष पहले ही ज्ञात कर लिया था। इस व्यवस्था में समाजशास्त्रियों ने भी अपनी भागीदारी देते हुए कहा कि यदि सन्निकट लोगों से विवाह सम्बन्ध स्थापित होने लगेंगें तब समाज में अनैतिकता, व्यभिचार एवं विवाह की शुद्ध-स्वरूपता में विच्छिन्नता आ जायेगी जो अन्ततः वैवाहिक व्यवस्था का विकृतरूप बनकर समाज में फैलाने लगेगा।

विवाह के प्रकार

ऋषि प्रणित धर्मशास्त्रों में मुख्यतः आठ प्रकार के विवाह गिनाये हैं-

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥[7]

इनमें प्रथम चार-ब्राह्म, दैव, आर्ष एवं प्राजापत्य विवाह उत्तम तथा पश्चात् के चार विवाह आसुर, गान्धर्व, राक्षस एवं पैशाच विवाह अधम या निम्न माने गये हैं। प्रथम चार प्रकार के विवाहों में पिता के द्वारा वर को कन्यादान अलंकारों एवं परिधानों से सुसज्जित कर किया जाता है, यहाँ 'दान' शब्द का प्रयोग गौण अर्थ में किया गया है, जिसका तात्पर्य है पिता या अभिभावक के द्वारा उत्तरदायित्व का भार अथवा कन्या के नियन्त्रण का भार पति को दिया गया है। यह दान सदैव जल के साथ ही दिया जाता है।[8]

वसिष्ठ[9] का कहना है- विवाहकार्य में अपहृत कन्या अगर मन्त्रों से अभिषिक्त होकर भी किसी कारण से विवाहित न हो सकी हो तो उसका पुनर्विवाह किया जा सकता है। स्मृतियों में कन्या के भविष्य के कल्याण के लिये अपहरणकर्ता से साथ होम एवं सप्तपदी करने को कहा गया है। जिससे कन्या को विवाहित होने की वैधता मिल सके। यदि अपहरणकर्ता ऐसा करने को तैयार न हो तो कन्या को किसी दूसरे के साथ विवाह कर तथा अपहरणकर्ता को भीषण दण्ड का भी प्रावधान था।[10]

आजकल मुख्यतः दो रीति का ही चलन हो चला है- ब्राह्मविवाह, जिसमें वैदिक रीति से वर को घर पर बुलाकर कन्यादान किया जाता है एवं दूसरा गान्धर्व विवाह, जो है- वह भी विकृत रूप में। जिसे आजकल 'लिव इन रिलेशनसीप' नाम दिया जाता है।

राजकुलों में गान्धर्व विवाह (जिसमें वर और कन्या के बीच प्रेमपूर्ण पारस्परिक सहमति की आवश्यकता) अधिकतर प्रचलन था, इसी प्रथा में स्वयंवर को भी गणना होती है। स्वयंवर का आयोजन विशेषकर राजकुलों में बड़े ही पैमाने पर होता था। भीष्म ने काशिराज की तीन कन्याओं का अपहरण अपने भुजबल पर कर अम्बिका एवं अम्बालिका का विवाह अपने रक्ष्य विचित्रवीर्य से कर दिया था।[11] सीता एवं द्रौपदी का स्वयंवर कन्याओं की इच्छा पर निर्भर नहीं था, क्योंकि यह स्वयंवर पूर्व

7 मनुस्मृति 3.21
8 गौतमस्मृति 5.16-17
9 वासिष्ठधर्मसूत्र, 17.73
10 याज्ञवल्क्य स्मृति 2.287-288

निर्धारित शर्त एवं दक्षता पर आधारित प्रदर्शन पर निर्भर था। जैसे सीता के स्वयंवर में शिव के धनुष को तोड़ने वाले के साथ एवं द्रौपदी का स्वयंवर यंत्रचालित धूमते हुए मत्स्याक्ष का भेदन करने वाले के साथ होना था। दमयन्ती के लिये आयोजित विशाल स्वयंवर में, जिसमें सभी राजवर उपस्थित थे; लेकिन दमयन्ती ने अपने पूर्व निर्धारित वर नल को ही चुना था। समस्त प्रकार के विवाहों का सार-संक्षेप कर मनु का कहना है-

अनिन्दितै: स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा:।
निन्दितैर्निन्दिता: नृणां तस्मान्निद्यान्विवर्जयेत्॥[12]

अनिन्दित (प्रशस्त) स्त्री-विवाह से अनिन्दित (उत्तम) संतान और निन्दित (कलंकित) विवाह से कलंकित संताने ही उत्पन्न होंगी। अतएव निन्दित विवाहों का परित्याग करना चाहिये।

विवाह संस्कार में व्यवहृत कुछ विधान

विवाह संस्कार में प्रचलित महत्त्वपूर्ण बातें भी ध्यान में रखनी पड़ती हैं।[13] जैसे-

- सर्वप्रथम कन्या के विवाह लिये वे के घर में बातचीत करने के लिये किसी विश्वासपात्र व्यक्ति को भेजना।
- वाग्दान या विवाह करने का निश्चय।
- मण्डप बनाना।
- नान्दीश्राद्ध या पुण्याहवाहन।
- हर-गौरीपूजन. यह विधि कन्यादान के पूर्व करने का विधान है।
- वर एवं वधू को अपने अपने घर में उबटन लगाना (समञ्जन)।
- वधूगृह बारात गमन।
- वधू के आवास पर वर एवं स्वजनों का स्वागत। यह बहुत कुछ सीमान्त-पूजन के जैसा ही है।
- वर-वधू का मण्डप में आना।
- परस्पर समीक्षण (एक दूसरे की ओर देखना)। इसपर पारस्कर (1.4), ऋग्वेद (10.85.40-44) आदि की ऋचाएँ पढ़ी जाती हैं। इस समय मंगलाष्टक पढने कभी विधान है।
- कन्यादान-वर को कन्या देना-यह आज भी प्रचलित है।
- अग्निस्थापन एवं अग्नि में आज्य की आहुतियाँ डालना। आहुतियों की संख्या में मन्त्रों के उच्चारण में मतैक्य नहीं। गोभिल (2.1.24-26), भरद्वाज (1.13) आदि।
- पाणिग्रहण (कन्या का हाथ पकड़ना)।
- लाजाहोम।
- अग्निपरीणयन।
- अश्मारोहण।
- सप्तपदी वर एवं वधू का साथ-साथ सात पद चलाना।
- मूर्धाभिषेक। द्रष्टव्य आश्वलायन(1.7.20),गोभिल (2.2.15-16)।
- सूर्योवीक्षण। द्रष्टव्य (ऋ०7.66.16,वाज० सं०-36.24)।
- हृदयस्पर्श। द्रष्टव्य पारस्कर (1.8), भारद्वाज-(1.17)।
- प्रेक्षकानुमन्त्रण- अर्थात् नव-विवाहित दम्पत्ति की ओर संकेत करके दर्शकों को सम्बोधित करना। द्रष्टव्य पारस्कर (1.8), ऋ०(10.85.33)।
- ध्रुवारुन्धति-दर्शन। किसी-किसी के मत में ध्रुव एवं अरून्धति के साथ सप्तर्षि दर्शन की भी बातें कही गयी है।
- आचार्य को दक्षिणादान।
- वर के घर में वधू का प्रवेश।
- गृहप्रवेशनीय होम। द्रष्टव्य आपस्तम्ब (6.6.10।
- आग्नेय स्थालीपाक (अग्नि में पक्वान्न की आहुति देना)। द्रष्टव्य आपस्तम्ब (7.1-5), गोभिल

11 महाभारत आदिपर्व 102.16 12 मनुस्मृति, 3.42
13 काणे, पी.बी., धर्मशास्त्र का इतिहास, जिल्द प्रथम, पृष्ठ 301-306.

(2.3.19-20), भारद्वाज (1.18)।

- त्रिरात्रव्रत-विवाह के उपरान्त तीन रात्रियों तक के अनुपालनीय नियम। द्रष्टव्य आपस्तम्ब (8.8.10), बोधायन (1.5.16-17)।
- चतुर्थी कर्म- विवाहोपरान्त चौथी रात्रि के कृत्य। इन कृत्यों में अनुक्रम में मतैक्य नहीं है।
- तैल-हरिद्रारोपण अर्थात् वधू के शरीर पर तेल और हल्दी के लेप के बाद बचे हुए भाग को वर के शरीर पर लेपन। (धर्मसिन्धु- 3.257)।
- आर्द्रक्षितारोपण अर्थात् वर एवं वधू द्वारा भींगे हुए अक्षतों को एक दूसरे के ऊपर छिड़कना। द्रष्टव्य रघुवंश (7)।
- उत्तरीय प्रान्त-बन्धन-वर और वधू के वस्त्र के कोने हल्दी और पान बाँधकर दोनों कोने को एक कर बाँधना। (संस्कारप्रकाश- पृष्ठ० 829)।
- एरिणीदान- धर्मसिन्धु (पृष्ठ०267)- बाँस की बनी हुई बड़ी डलिया में भेंट सजाकर वर की माता को देना।
- देवकोत्थापन एवं मण्डप को हटाना-बुलाये गए देवी-देवताओं को ससम्मान विदा करना।

इन सबों में एक महत्त्वपूर्ण विधान है मंगलसूत्र-बन्धन। जिसमें वर अपने वधू के गले में स्वर्णिम अथवा मोतियों आदि के दाने युक्त में गुंथे हुए डोर को पहनाता है। यह कार्य विवाह होने के बाद ही संपन्न होता है। यह एक ऐसा सूत्र है जिसे स्त्री पति के जीवन पर्यंत धारण करती है। इस विषय पर लघु-आश्वलायन स्मृति (15.33) आदि जैसे ग्रन्थों ने प्रकाश डाला है।

अन्य वैवाहिक कृत्य

कभी-कभी यह भी देखा गया है कि कुण्डली में वैधव्य रहने पर इसके परिहार के लिये अश्वत्थ विवाह आदि भी किये जाते हैं। जैसे-

कुम्भ विवाह- इसमें विवाह के एक दिन पूर्व पुष्प आदि से सुसज्जित घट जिसमें भगवान् विष्णु की स्वर्ण प्रतिमा रखी जाती है और सूत्र से कन्या चारों ओर से लपेट दी जाती है। वर के दीर्घायु की कामना करते हुए वरुणदेव की भी पूजा की जाती है। इसके उपरान्त कुम्भ का जल में फोड़ दिया जाता है और इस जल को पाँच टहनियों वाली शाखा से कन्या पर छिटकाव किया जाता है। ऋग्वेद 7.49 के मन्त्र पाठ कर ब्रह्मभोज का भी विधान है।

अश्वत्थ-विवाह- यह विधि की कमोवेशी कुम्भ-विवाह जैसे ही है, लेकिन इसमें कुम्भ के स्थान पर अश्वत्थ की पूजा होती है। और स्वर्णिमविष्णु की मूर्ति की पूजा के उपरान्त किसी ब्राह्मण को दान दे दी जाती है। इस विधि से भी वैधव्य-रक्षा की जाती है।[14]

अर्क-विवाह- निर्णयसिन्धु, पृ०. 328, बौधायन गृह्यशेषसूत्र, 5 में यह वर्णन आया है कि यदि किसी व्यक्ति की दो पत्नियों की मृत्यु हो जाती हो, तो व्यक्ति को तीसरी कन्या से विवाह के पूर्व अर्क-विवाह करने का विधान है।

वृक्ष से विवाह करने का विधान आदिम जातियों में भी प्रचलित है। खासकर संथाल एवं मुण्डा जैसे जनजातियों में। प्रथम-चरण में किशोर युवती का विवाह किसी आम, इमली जैसे फलदायक वृक्ष के साथ होता है, जिसे आत्मिक विवाह का नाम दिया जाता है। तत्पश्चात युवती विवाह योग्य होने के बाद किसी युवक से विवाह करती है। यह इसका शारीरिक या लौकिक विवाह है।[15]

***

14 मित्रमिश्र, वीरमित्रोदय, द्वितीय भाग, संस्कारप्रकाश पृ०868-869
15 क्रिस्टोफर ऑगस्टस बी.टी., आदिमधर्म एक परिचय, हिंदी थियोलॉजिकल लिटरेचर कमिटी, 1992, पृ० 116

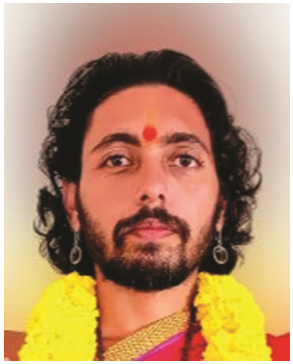

समानगोत्रप्रवर में विवाह -निषेध एवं अपवाद

निग्रहाचार्य भागवतानन्द गुरु

धार्मिक उपदेशक, शोध-लेखक, सनातन धर्म के शास्त्रीय स्वरूप के लिए शास्त्रचिन्तक, अध्येता। सम्प्रति: टेंडर, रातु, राँची, झारखंड।

विवाह में लगभग सभी शास्त्रकार कहते हैं कि सगोत्र तथा माता-पिता के सपिण्ड में विवाह निषिद्ध है। किन्तु इस सन्दर्भ में लोकाचार जो कि श्रुति-स्मृति के बाद एक मान्य प्रमाण है, विचारणीय हो जाता है। कुछ ऐसे समाज हैं, जहाँ समान गोत्र में भी कुछ परिस्थिति में विवाह की मान्यता दी गयी है। उदाहरण के लिए लेखक ने मगध के शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का विवरण दिया है, जिसमें यदि मूलग्राम का भेद हो तो सगात्र विवाह की अनुमति लोकाचार से दी गयी है। एक मूलग्राम के होने पर अथवा एक मूलग्राम के एक समूह के होने पर तो सर्वथा निषिद्ध है। इसी प्रकार, लोकाचार के कारण दक्षिण भारत में मातृसपिण्ड कन्या के साथ विवाह की मान्यता मिली है। इसी सन्दर्भ में लेखक ने लोकाचार का प्रामाण्य सिद्ध किया है। इस लोकाचार को भी हमें शास्त्र के समान मान्यता देनी चाहिए।

श्रीमद्भागवत के निमियोगीश्वर संवाद तथा श्रीमद्भगवद्गीता के ज्ञानकर्मसंन्यासयोग के अनुसार कर्म, अकर्म और विकर्म, यह तीन भेद हैं, जिनमें बड़े बड़े विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं।

कर्माकर्म विकर्मेति वेदवादो न लौकिकः।
वेदस्य चेश्वरात्मत्वात्तत्र मुह्यन्ति सूरयः॥[1]

गीता कहती है कि-

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥[2]

वेदों के द्वारा निर्दिष्ट कृत्य को कर्म कहते हैं। निषिद्ध कृत्य को अकर्म कहते हैं। निर्दिष्ट कृत्य में मनमानी को विकर्म कहते हैं, अतः बहुत सूक्ष्मता से इनका विचार करना चाहिए क्योंकि कर्म की गति बड़ी गहन है —

गहना कर्मणो गतिः।

कर्म को छोड़ने से भी दोष है एवं अकर्म को करने से भी दोष है। विकर्म को और भी निन्द्य समझना चाहिए। "जीवेम शरदः शतम्" के अनुसार सौ वर्षों की सामान्य वेदोक्त आयु प्राप्त करने वाला मनुष्य भी विकर्म के कारण अल्पकाल में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

1 श्रीमद्भागवत महापुराण, 11.03.43
2 श्रीमद्भगवद्गीता 04.17

मानुषः शतजीवीति पुरा वेदेन भाषितम्।
विकर्मणः प्रभावेण शीघ्रञ्चापि विनश्यति॥[3]

भगवती गीता में देवी पार्वती कहती हैं कि श्रुतिस्मृति (एवं उनके तत्तदंशों का स्वशैली में व्याख्यान करने वाले अन्य ग्रन्थों) के द्वारा प्रतिपादित विषय धर्म हैं। इससे इतर शास्त्रों के कथन धर्माभास हैं। बाहर से देखने पर धर्म के समान लगते हैं, किन्तु वस्तुतः धर्म होते नहीं, अतः वैदिकों के द्वारा अग्राह्य हैं।

श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं यत्स धर्मः प्रकीर्तितः।
अन्यशास्त्रेण यः प्रोक्तो धर्माभासः स उच्यते॥[4]

सत्पुरुष धर्म एवं धर्माभास के मध्य धर्मानुबन्ध की भी चर्चा करते हैं। सामान्यतः बाहर से अधर्म के समान लगने पर भी अन्दर से जो धर्म हो, वह धर्मानुबन्ध है। बाहर से धर्म के समान लगने पर भी अन्दर से जो अधर्म हो, वह धर्माभास है।

धर्म के ज्ञान हेतु क्रमशः वेद, फिर अन्य धर्मशास्त्र और अन्त में लोकाचार का आश्रय लेना चाहिए, ऐसा महाभारत के आश्वमेधिक पर्व में कहते हैं -

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।
द्वितीयं धर्मशास्त्राणि तृतीयं लोकसंग्रहः॥[5]

मनुस्मृति भी इस बात से सहमति व्यक्त करती है। इन विषयों के धर्मबोध में अस्पष्टता होने पर मीमांसा शास्त्र से उसका समाधान करना चाहिए, यथा आचार्य कुमारिलभट्ट का कथन है -

धर्मे प्रमीयमाणे हि वेदेन करणात्मना।
इतिकर्तव्यताभागं मीमांसा पूरयिष्यति॥[6]

धर्माचरण को वर्णभेद, आश्रमभेद, क्षेत्रभेद, कालभेद और उद्देश्यभेदादि से कई अनुशासनों में बद्ध किया गया है। प्रत्येक क्रिया प्रत्येक वर्ण, आश्रम, क्षेत्र, काल और उद्देश्य में समान ही हो, यह आवश्यक नहीं है। बिना कर्ता की स्पष्टता के, दूध का व्यापार करना न धर्म है और न अधर्म है। वैश्य के द्वारा करने पर यही क्रिया धर्म बन जाती है और ब्राह्मण के द्वारा किए जाने पर अधर्म। कुछ कृत्य क्षेत्र के आश्रय से भी विहित और निषिद्ध बन जाते हैं। **'दक्षिणे मातुली कन्या उत्तरे मांसभक्षणम्'** आदि के आश्रय से दक्षिण में मामा की पुत्री से विवाह और उत्तर में मांसभक्षण का क्षेत्राचार से समर्थन करते हैं। यद्यपि यह भी शुद्ध धर्म नहीं है किन्तु कालक्षेप की शिष्टसम्मत विप्रतिपत्ति से उस क्षेत्र के लोगों के लिए ग्राह्य हो जाता है। दक्षिण के इस लोकाचार के सम्बन्ध में महर्षि बौधायन का कथन है

अब्रह्मचारिदाराद्यैः सार्द्धं भोजनकर्म च।
मातुलादिसुतायाश्च विवाहः शिष्टसम्मतः॥[7]

उत्तर के लोकाचार के सम्बन्ध में महर्षि वेदव्यास का कथन है -

समुद्रयानं मांसस्य भक्षणं शास्त्रजीविका।
सीधुपानमुदीच्यानामविगीतानि धर्मतः॥[8]

ऐसे ही यद्यपि सामान्यतः स्त्रियों के लिए शङ्ख बजाने का निषेध शास्त्रों में वर्णित है, क्योंकि इससे लक्ष्मी की हानि होती है, यथा श्रीमद्देवीभागवत में कहते हैं -

स्त्रीणां च शङ्खध्वनिभिः शूद्राणां च विशेषतः।
भीता रुष्टा याति लक्ष्मीस्तत्स्थलादन्यदेशतः॥[9]

यही श्लोक थोड़े भेद के साथ ब्रह्मवैवर्तपुराण के प्रकृतिखण्ड, अध्याय- 20 के श्लोक- 31 (कुछ प्रतियों में 30) में भी प्राप्त होता है। किन्तु ऐसे ही क्षेत्राचार की शिष्टसम्मत विप्रतिपत्ति से **"प्राच्यां स्त्रीशङ्खवादनम्"** के

3 गरुडपुराण, प्रेतकाण्ड, 24.10
4 श्रीमद्देवीभागवत महापुराण, 07.39.15
5 महाभारत, कुम्भकोणम् संस्करण, 14.10.42,
6 शालिकनाथमिश्र, प्रकरणपञ्चिका, सुब्रह्मण्यशास्त्री (संपादक), बनारस हिन्दी विश्वविद्यालय, 1961ई. पृ, 255, बृहट्टीका ग्रन्थ से उद्धृत

आधार पर पूर्वदिशा में स्थित असम, बंगाल की स्त्रियाँ शङ्खवादन करती हैं। सामान्यतः शास्त्रसिद्धान्त है कि अपने समान गोत्र वाली कन्या से विवाह नहीं करना चाहिए। यदि विवाह करके उससे सन्तान की उत्पत्ति कर ली तो उस सन्तान की चाण्डाल के समान संज्ञा जानकर उनके ही मध्य छोड़ दे और गुरुतल्पगमन का प्रायश्चित्त (चान्द्रायण आदि भी) करके उस सगोत्रा पत्नी का मातृभाव से पालन करें -

न सगोत्रां न समानार्षप्रवरां भार्यां विन्देत।[10]
परिणीय सगोत्रां तु समानप्रवरां तथा।
त्यागं कृत्वा द्विजस्तस्यास्ततश्चान्द्रायणञ्चरेत्॥[11]
सगोत्रायां प्रजां जातां चण्डालेषु विनिक्षिपेत्।
गुरुतल्पव्रतं कृत्वा तां रक्षेज्जननीमिव॥[12]

यह तो अज्ञानता से सगोत्रविवाह हेतु कहा। जानबूझकर सगोत्रविवाह वाले को वृद्धयम ने तो और भी कठोर प्रायश्चित्त बताते हुए प्राणत्याग करने कहा है —

सपिण्डापत्यदारेषु प्राणत्यागो विधीयते।

किन्तु शिष्टसम्मत विप्रतिपत्ति में कुछ क्षेत्रभेद से अधर्म भी धर्म का तथा धर्म भी अधर्म का विक्षेपधारक हो जाता है।

जैसे हमने महर्षि बौधायन के वचनों से बताया कि यद्यपि मामा की पुत्री से विवाह निषिद्ध है किन्तु दक्षिण में शिष्टसम्मत विप्रतिपत्ति से उस स्थान के लोगों के लिए यह मान्य हो जाता है, अन्य जनों के लिए नहीं, इसी का समर्थन देवगुरु बृहस्पति भी करते हैं-

उदूह्यते दाक्षिणात्यैर्मातुलस्य सुता द्विजैः।
मत्स्यादाश्च नराः पूर्वे व्यभिचाररताः स्त्रियः॥[13]

कर्म भी श्रुतिसम्मत न्याय्य और श्रुतिविरुद्ध वैपरीत्यभेद से व्यवहारप्रभक्त हो जाता है- न्याय्यं वा विपरीतं वा (श्रीमद्भगवद्गीता) अतः स्मृतिकार देवल स्पष्ट करते हैं -

यस्मिन्देशे त्वनाचारो न्यायदृष्टः सुकल्पितः।
स तस्मिन्नेव कर्तव्यो नान्यदेशे स ईरितः॥
यस्मिन्देशे पुरे ग्रामे त्रैविद्ये नगरेऽपि वा।
यो यत्र विहितो धर्मस्तं धर्मं न विचारयेत्॥

जो अधर्म जिस देश में न्यायसम्मत हो, भली प्रकार से स्थापित हो, उस देश में ही वह कृत्य उसके निवासी करें, अन्य जनों के लिए कदापि नहीं। जिस देश, पुर, ग्राम, अपनी अपनी वेदशाखाओं में, नगर आदि में जो धर्म जैसा बताया गया हो, उसका वैसा भी अन्यथा विचार किए बिना पालन करना चाहिए।

शास्त्रे सिद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयम्।

चतुर्वर्गचिन्तामणिकार आचार्य हेमाद्रि, निर्णयसिन्धुकार आचार्य कमलाकरभट्ट, ब्राह्मणोत्पत्ति-मार्तण्डकार पण्डित ज्वालाप्रसाद-मिश्र-प्रभृति आचार्यों ने शास्त्रालोडन करके मगाख्य शाकद्वीपीय ब्राह्मणों को दिव्य ब्राह्मण की संज्ञा के साथ स्वीकार किया है। भविष्यपुराण के ब्राह्मपर्व में जब गौरमुख मुनि ने **"मगो दिव्यो द्विजोत्तमः"** कहा तब श्रीकृष्णपुत्र साम्ब ने महर्षि

7 वैद्यनाथ दीक्षित, स्मृतिमुक्ताफल, वैद्य एस.वी. राधाकृष्णशास्त्री (सम्पादक), प्रथम भाग, वर्णाश्रमधर्मकाण्ड, 2010ई. स्मृतिरत्न का उद्धृत वचन, पृ. 531.
8 उपर्युक्त
9 श्रीमद्देवीभागवत महापुराण, स्कन्ध - 09, अध्याय - 23, श्लोक - 27/28)
10 बृहद्विष्णुस्मृति, अध्याय - 24, आज्ञा - 9
11 स्कन्दपुराण, ब्रह्मखण्ड-धर्मारण्यखण्ड, अध्याय - 21, श्लोक - 10
12 संस्काररत्नमाला, भाग - 01, द्वादश प्रकरण
13 भट्टोजी दीक्षित, चतुर्विंशतिमतसंग्रह, बनारस संस्कृत सीरीज, 1907, पृ. 96

वेदव्यास से **"दिव्येति ते कथं प्रोक्ताः"**, ऐसा प्रश्न किया। महर्षि वेदव्यास ने बहुत विस्तार से शाकद्वीपीय ब्राह्मणों में मगत्व, भोजकत्व, वाचकत्व, दिव्यत्वादि का विस्तार से निरूपण किया है, जो भविष्यपुराण, साम्बपुराण, ग्रहयामलतन्त्र आदि में द्रष्टव्य है।

साम्ब को शापभोग से कुष्ठ होना, उनका सुमन्तु, गौरमुख एवं वेदव्यासजी के अनुग्रह तथा मार्गदर्शन से सूर्याज्ञा प्राप्त करके शाकद्वीप में जाकर दिव्यता से युक्त सूर्यांश शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का आनयन करके जम्बूद्वीप में लाना और सूर्यसम्बन्धी अनुष्ठान से शापमुक्त होना, यह सब इतिहास सुप्रसिद्ध हैं, अतः उनका उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझता हूँ। महर्षि शातातप कहते हैं -

मातुलस्य सुतामूढ्वा मातृगोत्रां तथैव च।
समानप्रवराञ्चैव त्यक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥

अपने मामा की पुत्री एवं माता-पिता के समानगोत्रप्रवर की कन्या से विवाह यदि हो जाए तो उसका परित्याग करके चान्द्रायणव्रत करे। किन्तु जैसे मामा की पुत्री से विवाह करना सामान्यतः निषिद्ध होने पर भी बौधायन, बृहस्पति, देवल आदि के शिष्टसम्मत विप्रतिपत्तिमीमांसक वचनों के आश्रय से दाक्षिणात्यों के लिए मातुलीकन्या का ग्रहण मान्य हो जाता है, वैसे ही शाकद्वीपीय ब्राह्मणों हेतु पुरभेदप्राधान्यता से सगोत्रविवाह शिष्टसम्मत विप्रतिपत्ति में ग्राह्य हो जाता है, जबकि अन्य ब्राह्मणों में यह अपवाद नहीं।

दिव्य शाकद्वीपीय ब्राह्मणों के जम्बूद्वीप में आने के बाद ही उनका द्वीप नैमित्तिक रूप से प्रलयीभूत हो गया था, फलतः शाकद्वीपीयों के मात्र बहत्तर पुरों में विभक्त अष्टादशकुल ही शेष बचे थे। कुलरक्षण हेतु माता सत्यवती के आदेश को धर्मानुबन्ध मानते हुए महर्षि वेदव्यासजी ने नियोगविधि से आर्शीवादात्मक गर्भाधान करके पुत्रोत्पादन किया क्योंकि कुलधर्म और जातिधर्म को किसी भी प्रकार बचाना चाहिए, अन्यथा घोर नरक में जाना पड़ता है -

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत॥[14]

× × ×

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम॥[15]

अब कुलधर्म क्या है, इसमें उपर्युक्त श्लोकों के व्याख्यानांश में स्वामिश्री मधुसूदन सरस्वती लिखते हैं-

कुलधर्मा असाधारणाश्च।

कुलधर्म असाधारण होता है, सबों पर साधारणतः लागू नहीं अपितु मात्र उस कुल पर लागू होता है। स्वामिश्री आनन्दगिरि ने अपनी टीका में लिखा —

वंशप्रयुक्ताश्च धर्माः।

कुलधर्म वह है, जो उस वंशमात्र में प्रयुक्त है। स्वामिश्री गोपालानन्दमुनि स्पष्ट करते हैं-

कुलधर्माः- कुलपरम्परया समागताः स्वासाधारणा धर्माश्च।

अपनी कुलपरम्परा से प्राप्त मात्र अपने लिए विहित असाधारण धर्म को कुलधर्म कहते हैं। कुलधर्म पालनीय है -

उत्कृष्टजातिशीलानां गुर्वाचार्यतपस्विनाम्॥
गोत्रस्थितिस्तु या तेषां क्रमादायाति धर्मतः।
कुलधर्मं तु तं प्राहुः पालयेत्तं तथैव तु॥[16]

स्मृतिकार कात्यायन का कथन है- उत्कृष्ट कुल, जाति और शील वाले गुरु, आचार्य एवं तपस्वियों की जो गोत्रस्थिति धर्मानुसार कालक्रम से आती है, उसे कुलधर्म कहते हैं एवं उसका "उसी रूप में पालन" करना चाहिए।

14 श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय - 01, श्लोक - 40
15 श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय - 01, श्लोक - 44
16 बृहत्कात्यायनस्मृति, श्लोक - 84-85

स्वद्वीपनाशान्तर बचे खुचे अष्टादश पुण्यात्मा शाकद्वीपीय परिवारों के चित्त में अपने समाज के संरक्षण की चिन्ता व्याप्त होने पर उन्होंने शाकद्वीप में चली आ रही गोत्रस्थिति के आश्रय से यह विचार किया कि शाकद्वीपीयों के विवाह में 'पुर' की प्रधानता होगी, गोत्र की नहीं। चूंकि मगसंज्ञक शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का सृजन स्वयं भगवान् सूर्य ने निक्षुभा देवी के माध्यम से किया था, फलतः वे वंशविस्तार हेतु आर्षगोत्रमर्यादा में अनन्य नहीं थे। शाकद्वीपीयों में पुर की प्रधानता होती है। पुर क्या है?

आरान्तानि तु विंशतिः श्रुतियुतार्कान्तानि च द्वादशा -
दित्यान्तानि च मण्डलान्तकिरणान्तान्तानि च द्वादशः।
तान्येतानि पुराणि तत्र वसतां षट्कर्मणां सिद्धिता
शौचाचारवशीकृता जनपदाः साक्षाद्रविं मेनिरे॥1॥
उर्वारं प्रथमं द्वितीयमभितः पुण्यं खनेद्वारकं
छेर्यारं तु तृतीयकञ्च मखपारं तुर्यकं पञ्चमम्।
विख्यातञ्च पुरारमुग्रभवनं षष्ठं बुधैः सेवितं
देकुल्यारमतोऽथ सप्तमभलुन्यारं जगुः पण्डिताः॥02॥[17]

चौबीस आरान्त, बारह अर्कान्त, बारह आदित्यान्त, बारह मण्डलान्त एवं बारह किरणान्त, ऐसे बहत्तर पुरों में शाकद्वीपीय ब्राह्मण विभाजित हैं। इन्हीं बहत्तर पुरों में रहते हुए शाकद्वीपीय ब्राह्मण विप्रोचित षट्कर्म (यज्ञ करना-कराना, दान देना-लेना, पढ़ना-पढ़ाना) में सिद्धहस्त होकर पवित्र आचरण के साथ रहते हुए साक्षात् सूर्यवत् प्रतीत होते थे। उदाहरणस्वरूप- आरान्तों में प्रथम उर्वार, द्वितीय खण्टवार, तृतीय छेर्यार, चतुर्थ मखपार, पञ्चम पुरार, षष्ठ दे'व'कुल्यार एवं सप्तम भलुन्यार होते हैं। इसी प्रकार अन्यों को भी कुलधर्मशासक ग्रन्थों में वर्णित किया गया है।

'उर्वार' से प्रारम्भ करके 'वौर्यार' पर्यन्त शाकद्वीपीयों के चौबीस आरान्त पुर होते हैं। 'उल्वार्क' से प्रारम्भ करके 'उल्लूञ्चार्क' पर्यन्त शाकद्वीपीयों के बारह अर्कान्त पुर होते हैं। 'वरुणादित्य' से प्रारम्भ करके 'देवहुलासादित्य' पर्यन्त शाकद्वीपीयों के बारह आदित्यान्त पुर होते हैं। 'परिशामण्डल' से प्रारम्भ करके 'वटसारमण्डल' पर्यन्त शाकद्वीपीयों के बारह मण्डलान्त पुर होते हैं। 'पञ्चहाकरण' से प्रारम्भ करके 'कौशिककरण' पर्यन्त शाकद्वीपीयों के बारह करणान्त/किरणान्त पुर होते हैं। मैं स्वयं शाकद्वीपीयों की पुरव्यवस्था के प्रथम समूह आरान्त के दूसरे प्रकार खण्टवार पुर से सम्बन्धित हूँ।

शाकद्वीपीय ब्राह्मणों के कुलाचार में वर्णित शिष्टसम्मत विप्रतिपत्ति मीमांसा के आधार पर "ततो निवेशितं तेषां मया साम्ब पुरं स्मर, इत्यादि सूर्यवाक्येन शाकद्वीपे यौनसम्बन्धेन मगैरधिष्ठितानि यानि पुराणि आर्यावर्ते च तथाभेदेनाधिष्ठितानि यानि पुराणि तत्तत्पुरभेदमाश्रित्यैव मगानां विवाहो न तु गौणवशिष्ठादिगोत्रभेदमादायेति बोद्ध्यम्।" आदि कुलधर्मोपदेशक मगतिलकादि शिष्टकुलवृद्धसम्मत विप्रतिपत्त्युपदेष्टा ग्रन्थों के विधान से समझना चाहिए कि पुरभेदाश्रित वैवाहिक विधि के कारण "यदि पुरभेद हो रहा हो" तो शाकद्वीपीयों में सगोत्रविवाह का दोष नहीं लगता है, शेष ब्राह्मणों के सापेक्ष यह एक अपवाद के रूप में मान्य है। फिर भी पुर, गोत्र, प्रवर सब भिन्न हो, सपिण्डसम्बन्ध-हेतुसम्बन्ध आदि से इतर वरकन्या हों तो सर्वोत्तम है। यदि न हों तो स्वकुलवृद्धगृहीत पूर्वोक्तविधान से पुरभेदाश्रित सगोत्रीय विवाह मात्र शाकद्वीपीय ब्राह्मणों हेतु सामान्यतः ग्राह्य हो जाता है।

***

17 मगतिलक, तृतीय खण्ड, द्वासप्ततिपुरवर्णनम् 'पाण्डुलिपि'

भारतीय जनजातियों में विवाह

श्री संजय गोस्वामी

लेखन के क्षेत्र में 1500 से अधिक लेख। संप्रति : हिमालय व हिंदुस्तान के संरक्षक सदस्य, ग्रामीण विकास संदेश, सोसाइटी ऑफ बायोलॉजिकल साइंस एंड रूरल डेवलपमेंट के सह संपादक, तथा विज्ञान गंगा पत्रिका,(बीएचयू)., सलाहकार बोर्ड के सदस्य हैं यमुना जी/13, अणुशक्तिनगर, मुंबई-94, ई मेल - sr44000791@gmail.com

विवाह के आठ प्रकारों का उल्लेख स्मृतिकार करते हैं, जिनमें से चार या अधिकतम पाँच प्रकार के विवाह की अनुमति उन्नत समाज में दी गयी है। तब यह प्रश्न उठता है कि उन्होंने आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख क्यों किया? इसका उत्तर खोजने के लिए हमें जनजातीय विवाह की मान्यताओं को देखना होगा। शेष बचे तीन प्रकार के विवाह- आसुर, राक्षस तथा पैशाच का प्रचलन लोकाचार से जनजातियों में था, अतः स्मृतिकारों ने उन्हें भी विवाह मानकर आठ प्रकार की मान्यता दी। अतः हमें आठों प्रकार के विवाहों का स्पष्ट विवेचन देखने के लिए भारतीय जनजातियों को भी देखना होगा, जिनके विवाह की मान्यता स्मृतिकारों ने दी है।

सिंधु सभ्यता के पतन के बाद जो नवीन संस्कृति प्रकाश में आयी उसके विषय में हमें सम्पूर्ण जानकारी वेदों से मिलती है। इसलिए इस काल को हम वैदिक काल अथवा वैदिक सभ्यता के नाम से जानते हैं। प्रारंभिक वैदिक काल की राजनीति मूल रूप से केंद्र में जनजातीय प्रमुख के साथ एक जनजातीय राजनीति थी। जनजाति को आदिवासी भी कहते हैं। आदिवासी अर्थात जो प्रारंभ से यहाँ रहता आया है।

भारतीय समाज में प्रागैतिहासिक काल से लेकर आज तक आदिसमूहों एवं वनवासियों का उल्लेख मिलता है। वैदिक व उत्तर वैदिक काल, महाकाव्य काल में भी जनजातियों के नाम उल्लिखित हैं। आदिम जाति, आदिवासी, ट्राइव (कुटुंब, अविकसित समाज) एस्किमो (टुंड्रा) नीग्रो (अफ्रीका)। विद्वानों के अनुसार भारतवर्ष की प्रारम्भिक जातियों को छह भागों में विभक्त किया जा सकता है।

मंगोलॉयड

यह प्रजाति हिमाचल प्रदेश, नेपाल और असम में फैली हुई है। लाहुल और कुल्लू के कनेत, सिक्किम और दार्जिलिंग के लेप्चा, नेपाल के लिम्ब, मर्मी और गुरूंग, असम के बोडू लोग इस प्रजाति के मुख्य प्रतिनिधि हैं। इनका कद छोटा, सिर चौड़ा, नाक चौड़ी, चेहरा चपटा, भौंहें टेड़ी, रंग पीला और शरीर पर बाल कम होते हैं।

प्रोटो ऑस्ट्रेलियाड

प्रोटो ऑस्ट्रेलियाड एक शाखा है जिसमें ऑस्ट्रेलिया के मूल निवासियों की शारीरिक विशेषताओं का समावेश होता है। इसमें भारत की अधिकांश जनजातियाँ आ जाती हैं। 'तिने वेली' से प्राप्त प्रागैतिहासिक खोपड़ियों में भी इस प्रजाति के तत्त्व मिलते हैं। संस्कृत साहित्य में जिस 'निषाद' जाति का उल्लेख मिलता है, वे तथा 'फान इक्सटेड्स' ने जिस 'वेडिड' शाखा का उल्लेख किया है वह भी इसी वर्ग में आती है। दक्षिण भारत की 'चेंचू' तथा मध्य प्रदेश के भीलों में इस प्रजाति के लक्षण पाये जाते हैं।

भूमध्यसागरीय द्रविड़

भू-मध्यसागरीय द्रविड़ प्रजाति की तीन शाखाएँ भारत में आईं और अब मिश्रित रूप से उसके वंशज भारत में बहुत बड़ी संख्या में हैं। इनकी एक शाखा प्राचीन भूमध्यसागरीय है, जो कन्नड़, तमिल, मलयालम भाषा-भाषी प्रदेशों में रहती है।

नीग्रिटो

नीग्रिटो के अन्तर्गत दक्षिणी भारतीय वनों में रहने वाली कुछ जनजातियाँ और अण्डमान द्वीपसमूह की ओंग जनजाति।

जनजातियों का विवाह

सामान्यतः सभी जनजातियों में विवाह बचपन में ही हो जाता है। हम कह सकते हैं कि इनमें बाल विवाह की प्रथा पूरी तरह से प्रचलित है। उदाहरण के लिएए संथाल, मुंडा, उराव, गोंड, बैगा, कोल आदि जनजातियों में सामान्यतः लड़कों की विवाह योग्य आयु बारह से चौदह वर्ष तथा लड़कियों की विवाह योग्य आयु नौ से दस वर्ष के बीच होती है। कुछ जनजातियों में विवाह की उम्र पाँच से सात वर्ष के बीच ही होती है। इस उम्र के बाद जनजातियों में विवाह उचित नहीं है। सख्त सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण सभी लोगों को इन नियमों का पालन करना पड़ता है। भारतीय जनजातियों में केवल नागा और कुकी जनजातियाँ ही ऐसी हैं जिनमें विवाह की उम्र पन्द्रह से पच्चीस वर्ष के बीच होती है। दहेज प्रथा के विपरीत, वधू मूल्य की प्रथा आम तौर पर भारतीय जनजातीय जीवन में प्रचलित है।

जनजाति प्रथा के अनुसार, अनिवार्य रूप से दूल्हा या उसका पिता दुल्हन के पिता को एक निश्चित राशि देता है जो नकद या सामान के रूप में हो सकती है। आमतौर पर यह वधू मूल्य उपहार के रूप में दिया जाता है। दुल्हन की कीमत कुछ जनजातियों में पारम्परिक रूप से तय की जाती है और कुछ स्थानों पर लड़की पक्ष के मध्यस्थ द्वारा तय की जाती है। उदाहरण के लिएए जौनसार के बाहर 'खास' जनजाति में दुल्हन की कीमत परम्परा के अनुसार तय की जाती है। जबकि 'हो' जनजाति में इसका फैसला लड़की पक्ष द्वारा किया जाता है। जैसे-जैसे जनजातियों के बीच मुद्रा का प्रसार हो रहा है, दुल्हन की कीमत भी नकद में दी जाने लगी है।

बिहार की मुंडा जनजाति में यह प्रथा इतनी प्रचलित है कि सभ्य भारतीय समाज की दहेज प्रथा की तरह यह भी एक समस्या बन गई है। दुल्हन की कीमत भी व्यक्ति की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के अनुसार पूछी जाती है। इसका असर लड़कियों और लड़कों के कुंवारेपन पर पड़ता है। आम तौर पर, दूल्हे का पिता अपने रिश्तेदारों और दोस्तों से उपहार इकट्ठा करता है और उन्हें दुल्हन के पिता को देता है जो इसे अपने रिश्तेदारों में बाँट देता है।

भारतीय जनजातियों में विवाह को एक सामाजिक अनुबन्ध माना जाता है और जनजातियों में विवाह साथी चुनने के कई तरीके हैं।

1. सहमति से विवाह

यदि युवक-युवतियों को उनके माता-पिता द्वारा विवाह करने की अनुमति नहीं दी जाती है, तो वे भाग जाते हैं और यदि वे बच्चे पैदा करने के बाद स्वयं वापस लौट आते हैं, तो उन्हें सामाजिक स्वीकृति मिल जाती है। यह प्रथा बिहार और राजस्थान की भील जनजातियों में प्रचलित है। हाँ, इसे कहते हैं सुखी विवाह।

2. हठ-विवाह

इस प्रकार के विवाह में लड़की जबरन उस व्यक्ति के घर जाकर रहने लगती है जिससे वह विवाह करना चाहती है। उसे वहाँ भी अपमान सहना पड़ता है जब तक कि लड़के के माता-पिता उसे अपनी बहू के रूप में स्वीकार नहीं कर लेते। कई बार लड़की को पीटा जाता है, घर से निकाल दिया जाता है, खाना नहीं दिया जाता, लेकिन फिर भी अगर लड़की जिद पर अड़ी रहती है तो उसकी शादी कर दी जाती है। इस प्रकार का विवाह बिरहोर, हो, औरव, कमार तथा मुंडा लोगों में पाया जाता है।

3. दत्तक विवाह

इस प्रकार के विवाह में दामाद को गोद लिया जाता है और बेटी की शादी उससे की जाती है। जापान में गुलामी है, लेकिन दास का वहाँ कोई घटिया अर्थ नहीं है, परिवार के एक दूर के रिश्तेदार को गुलाम बनाकर रखा जाता है और बाद में लड़की की उससे शादी करा दी जाती है। इस प्रकार, आदिम जनजातियों में विवाह साथी चुनने की कई विधियाँ प्रचलित हैं, जो वहाँ की सामाजिक और आर्थिक स्थितियों पर निर्भर करती हैं। अधिकतर पर्यावरणीय एवं आर्थिक परिस्थितियाँ तथा यौन सुख की इच्छा उन्हें विवाह के बन्धन में बाँधती है।

4. परिवीक्षा विवाह

इस विवाह प्रथा के अनुसार लड़का और लड़की दोनों एक-दूसरे के साथ कई दिनों तक रहते हैं ताकि वे एक-दूसरे के स्वभाव को समझ सकें और यौन अनुभव प्राप्त कर सकें। यदि इस दौरान दोनों के बीच पूर्ण सामंजस्य हो जाता है तो वे शादी कर लेते हैं। यदि उनका स्वभाव एक-दूसरे के अनुकूल और अनुकूल नहीं है तो वे अलग हो जाते हैं और युवक लड़की के माता-पिता को कुछ मुआवजा देता है। यह प्रथा दरगुल और कुकी समाज में देखी जाती है।

5. अपहरण विवाह

इस प्रकार के विवाह में लड़की का अपहरण कर उससे विवाह कर लिया जाता है। विकास क्रम में विवाह का पहला रूप अपहरण विवाह था। समाज के विकास और नये कानूनों के प्रभाव से इस प्रकार की शादियाँ ख़त्म हो रही हैं। परंतु अब केवल क्रियात्मक अपहरण ही इसके अवशेष के रूप में देखा जाता है। बुशमेन लोगों में, क्रियात्मक विवाह समारोह प्रचलित हैं। दावत के मौके पर दूल्हा और दोनों पक्षों के लोग इकट्ठा होते हैं। भोज के दौरान दुल्हन का हाथ पकड़ता है। ऐसा करने से दोनों तरफ के लोगों के बीच युद्ध जैसी स्थिति पैदा हो जाती है और दूल्हे की पिटाई हो जाती है। यदि युद्ध के दौरान दुल्हन दूल्हे का हाथ पकड़ लेती है तो उन दोनों की विधिपूर्वक शादी कर दी जाती है। लेकिन अगर उन्होंने हाथ छोड़ दिया तो उनकी शादी नहीं हो सकेगी। कई भील जातियाँ इस परम्परा का पालन करती हैं।

6. परीक्षण विवाह

इस प्रकार के विवाह में पुरुष के साहस और बहादुरी की परीक्षा ली जाती है और यदि वह परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता है तो उसकी शादी उस लड़की से कर दी जाती है। कुछ जनजातियों में शादी के इच्छुक युवकों से शादी से पहले अपनी बहादुरी साबित करने की उम्मीद की जाती है। अगर वे ऐसा करने में सफल

हो जाते हैं तो उन्हें अपनी पसंद की लड़कियों से शादी करने का अधिकार है। गुजरात के भीलों में वीरता की परीक्षा एक उत्सव में होती है। होली के अवसर पर इनके बीच 'गोल गधेड़ो' नामक त्यौहार मनाया जाता है। किसी खंभे या ताड़ के पेड़ पर नारियल या गुड़ बांधा जाता है। गाँव के कुँवारे लड़के-लड़कियाँ इस खंभे या पेड़ के चारों ओर दो घेरे बनाकर नृत्य करते हैं। भीतरी घेरा लड़कियों से बना है और बाहरी घेरा लड़कों से बना है। ढोल आदि बजाए जाते हैं तथा नृत्य किया जाता है। नृत्य के दौरान ही लड़के लड़कियों के घेरे को तोड़कर खंभे से नारियल और गुड़ निकालने की कोशिश करते हैं। लड़कियाँ ऐसा करने वाले युवक को झाड़ू आदि से पीटती हैं और उसके कपड़े भी काटतीए खरोंचती और खींचती हैं। इसके बाद भी अगर कोई व्यक्ति नारियल और गुड़ खाने में सफल हो जाता है तो उसे उस मंडल की लड़कियों में से अपनी पसंद की लड़की से शादी करने का अधिकार है।

7. क्रय विवाह

इस प्रकार के विवाह में दुल्हन पाने के लिए दुल्हन के माता-पिता या उसके रिश्तेदारों को वधू मूल्य के रूप में कुछ धनराशि चुकानी पड़ती है। साइबेरिया की किर्गिज़ जनजाति में दुल्हन की कीमत इतनी अधिक होती है कि व्यक्ति को कई पत्नियाँ रखनी पड़ती हैं और वे आमतौर पर तलाक भी नहीं देते हैं क्योंकि इसके बाद शादी करने का मतलब है भारी मात्रा में धन जुटाना, जो एक मुश्किल काम है।

8. सेवा विवाह

सेवा विवाह वधू प्राप्ति का साधन है। दामाद अपने ससुराल वालों की सेवा करता है और बदले में उनकी बेटी को पत्नी के रूप में प्राप्त करता है। कुछ जनजातियों में दामाद को शादी से पहले सेवा करनी पड़ती हैय तो कुछ नौकर के रूप में काम करने चले जाते हैं और कुछ वर्षों तक सेवा करने के बाद अपने ससुर की बेटी से शादी करके घर लौट आते हैं। ऐसे व्यक्ति को गोंड लोगों में लमनाई और बैगाओं में लम.सेना या गहरिया कहा जाता है।

9. अदला-बदली विवाह

यह भी पत्नी पाने का एक तरीका है। दो परिवारों के बीच लड़कियों की अदला-बदली होती है। इनका उद्देश्य कन्या शुक्ल के अनिष्ट से बचना भी है। यह प्रथा उत्तर प्रदेश की कुछ ऊंची जातियों में भी प्रचलित है, इसे अदला-बदली कहा जाता है, क्योंकि इसमें जब एक आदमी का बेटा दूसरे आदमी की बेटी से शादी करता है, तो बदले में उसका बेटा दूसरे आदमी की बेटी से शादी करता है। दूसरा आदमी पहले आदमी की बेटी से शादी करता है। इसे बट्टा-सट्टा कहा जाता है

10. बहुपत्नी विवाह

एक समय पर एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करने की प्रथा को बहुपत्नी विवाह कहा जाता है। साधारणतया जिन जनजातियों में बहुपत्नी विवाह का प्रचलन है, वहाँ जनजाति के कुछ प्रमुख व्यक्ति ही एक से अधिक पलिया रखते है, क्योंकि उनके लिए एक से अधिक पत्नियों को रखना सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक समझा जाता है। उदाहरण के लिए, भारत में नागाए बैगा, गोड, लुशाई, हो, खस तथा अनेक दूसरी जनजातियों में बहुपत्नी विवाह का प्रचलन है।

भारतीय जनजातियों में विवाह परिवार का वर्गीकरण के आधार पर, संरचना के आधार पर, व निवास के आधार पर किया जाता है। सभी जनजातियों में बहुपत्नी विवाह की प्रथा का रूप समान नहीं है। कुछ जनजातियों में सभी व्यक्तियों को बहु-पत्नी विवाह की अनुमति प्राप्त है जबकि कुछ जनजातियों में यह अधिकार केवल उन्ही व्यक्तियों को मिलता है जिनकी सामाजिक स्थिति काफी ऊंची हो। उदाहरण के लिएए भारत में वैगा जनजाति में केवल कुछ गांवों के

व्यक्तियों को ही बहुपत्नी विवाह का अधिकार मिला हुआ है। जनजातीय विवाहों में भी बाहरी समूहों की तरह प्रदर्शनवाद और अपव्यय की प्रवृत्ति बढ़ रही है। अब अनेक जनजातियों में दहेज के प्रचलन से सम्बन्धित समस्याएं भी बढ़ने लगी हैं जिसके फलस्वरूप उनमें पारिवारिक विघटन की घटनाओं में वृद्धि हो रही है।

संदर्भ सूची

- गुप्ता, एम.एल.ए शर्मा, डी.डी. (2006), समाजशास्त्र, सत्य भवन प्रकाशन, आगरा
- जैन, शोताभिया (1998), फैमिली, मैरिज एंड मैरिज इन इंडिया, नई दिल्ली, नई दिल्ली
- कपाड़िया, के.एम. (2006), भारत में विवाह और परिवार, के.एम., मोतीलाल बनसीदास प्रकाशक। नई दिल्ली
- त्रिपाठी, राजेश (2016), नैदारी का समाजशास्त्र, विवाह और परिवार, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट
- शर्मा, डॉ. श्रीनाथ, आदिवासी समाज, मध्य प्रदेश। हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल, 2015
- योजना, संवैधानिक प्रावधान, कानून और जनजातियाँ, जनवरी 2014
- दुबे, श्यामाचरण, ट्राइबल इंडिया, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
- दुबे, श्यामाचरण, आदिवासी भारत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2017
- ऋक्षित, कुमार डॉ. ध्रुव, समाजशास्त्र, अनुसूचित जनजाति शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी इंदौर
- गुप्ता, डॉ. मंजू, जनजातियों का सामाजिक-आर्थिक उत्थान, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 2007
- शर्मा डॉ. श्रीवास, आदिवासी समाज, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, वर्ष 2015
- भटनागर एस.के. गधेर, ए. ग्राम सर्वेक्षण, भारत की जनगणना, जनवरी 2021
- निर्गुण बसंत, सहरिया प्रकाशन, मध्य प्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद, भोपाल, वर्ष 2012

***

गवालम्भन

विवाह में गवालम्भन को लेकर वामपंथी इतिहासकार कहते हैं कि इसमें गो-हत्या की जाती थी। द्रष्टव्य है कि वर गाय को स्वीकार कर उसके वध का निषेध कर उसे चरने के लिए स्वतंत्र छोड़ देते हैं। इससे स्पष्ट है कि गवालम्भन में गो-वध नहीं होता था।

ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः। प्रनुवोचञ्चिकितुषे जनाय नागमागामनागामदितिं वधिष्ट। मम चामुष्य च पाप्मानं हनोमीति यद्यालभेत।

एक नाई वर की अंजलि में घास का एक तिनका रखकर तीन बार घोषणा करता है: 'गाय!' इसके बाद यजमान गाय को अर्पित के लिए आगे बढ़ता है। वर गाय को देखकर कहता है, "जिन्होंने मुझसे पूछा था, उन्हें कहा गया था कि निर्दोष गाय को मत मारो जो अदिति (देवताओं की माँ) है; वह रुद्रों की माता, वसु की पुत्री, आदित्यों की बहन और अमृत का स्रोत है। मेरे अपने पाप और मेरे यजमानों के पाप नष्ट हो गए हैं। गाय को चरने के लिए स्वतन्त्र करो।" यह कहकर वह तिनके को काटकर फेंक देता है।

विवाह का काव्य-सन्दर्भ

डॉ. राजेन्द्र राज

स्वतंत्र पत्रकार एवं पूर्व प्राचार्य, जनता कॉलेज, सूर्यगढ़ा पुरानी बाजार, सूर्यपुरा, पोस्ट और थाना- सूर्यगढ़ा, जि. लखीसराय (बिहार), ईमेल- rajendraraj8140@gmail.com

भारतीय महाकाव्य की परम्परा में श्रृंगार रस को रसराज कहा गया है। रस-दर्शन में तो उसे सभी रसों की उत्पत्ति में मूल माना गया है। तथापि जब हम पति-पत्नी के बीच सम्बन्ध को लेकर कालिदास-जैसे कवि के द्वारा वर्णित तथ्यों को देखते हैं तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि यहाँ स्मृति तथा भारतीय दर्शन में निहित तथ्यों का पूर्णतः पालन हुआ है। कविकुलगुरु कालिदास एक ओर पतिपत्नी के सम्बन्ध को वाणी तथा अर्थ के बीच अटूट सम्बन्ध से उत्प्रेक्षा करते हैं तो दूसरी ओर रघुवंश में ही अज-विलाप में पत्नी के चार आदर्श स्वरूपों का वर्णन करते हैं। लेखक ने भारतीय परम्परा में वर्णित इस उदात्त स्वरूप की आधुनिक अवहेलना को घातक सिद्ध किया है। वर्तमान में विवाह की विधि केवल यौन-सुख की अवधारणा पर आधारित हो गयी है, जिसके कारण कतिपय सामाजिक विषमताएँ आ गयी हैं।

विवाह जैसे पवित्र शब्द विशिष्ट वहन या उत्तरदायित्व से पूर्ण हैं- 'विशेषरूपेण वहतमे कन्या भारं इति विवाहः। गृहस्थाश्रम में घर की शोभा स्त्री-पुरूष के पारस्परिक मित्र-भाव से मिल कर रहने से होती है। पक्षी अपने दो पंखों के मेल से भूषित होने पर ही आकाश में उड़ता है-

'विहंगमः पक्षद्वयेन भूषितः,
उड्डीयते व्योम्नि सुखेच्छया यथा।
तथा गृहस्थस्य गृहस्य शोभा
प्रजायते यत्र द्वयोऽस्ति सौहृदः॥

(सुभाषित श्लोक)

पारस्कर गृह्यसूत्र में ऋग्वेद के 10.85.47 मन्त्र का उल्लेख हुआ है-

समञ्जन्तु विश्वेदेवा समापो हृदयानि नौ।
सम्मातरिश्वा सन्धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ॥

प्रचलित हिन्दू धर्म में जो श्रेष्ठ है और स्वीकार करने के योग्य है वही वर है। दो परिवारों के मिलन में इस विवाह पद्धति में वर को स्वीकार करनां तथा कन्या पक्ष के द्वारा वरेच्छा, तिलक, हरिद्रालेपन, द्वार-पूजा में विशेष आसन,स्वागत, आत्मीयता, दूर्वा, पाणि-ग्रहण, अग्नि तथा कुटुम्ब परिवार के सदस्यों के समक्ष गठबन्धन, और कन्यादान में आत्मीयता के दिव्य भाव समाहित हैं ।

यह पाणि-ग्रहण शरीर तथा मन से आत्मा की एक संयुक्त इकाई होना है जो दूर्वा के समान कभी निर्जीव

नहीं हो सकता। आम के पत्ते का भी व्यापक अर्थ हैं। पारम्परिक पद्धति के इस विवाह संस्कार में वर-वधु के बीच किसी पर शासन, करने, अपने अधीन बनाए रखने, वश में करने, लाभ या अहंकार को त्याग कर सेवा, सहायता, उदारता, सहिष्णुता बरतने के संदेश हैं। इसी से गृहस्थी का रथ चलेगा, और इसी रीति-रिवाज से मन में स्वीकार कर के आजीवन बन्धन में बँधना है। विवाह वेदी पर मौन से सहमति के पूर्व पूर्व में सहमति होती है एवं हृदय से सहमति मिलने पर विवाह-संस्कार के आगे बढ़ने की प्रक्रिया होती है। आवश्यक सामग्री के साथ यज्ञोपवीत का का जोड़ा पीले रंग के वस्त्र में वस्त्र व हाथ में पुष्प के साथ होता हैं। इस धर्मानुष्ठान में विवाह-संस्कार का आयोजन संभ्रांत व्यक्तियों, गुरुजनों परिवार के सदस्यों देवताओ आदि की उपस्थिति में होता है। दोनों वर-वधू में से कोई एक-दूसरे की उपेक्षा नहीं करेंगे, कर्तव्य-बन्धन में बँधे रहेंगे और प्रताड़ित करने का कार्य नहीं करेंगे। निःस्वार्थ प्रतिज्ञा-बन्धन की घोषणा भी की जाती है। सात जन्मों का बन्धन है। इसलिए विवाह कोई काम नहीं है, बल्कि 'राम' है।

विवाह शब्द की अलग व्याख्या में विकारों और वासनाओं का हवन है तथा इसके बाद गृहस्थ जीवन में प्रवेश है- जहाँ संयमयुक्त व्यवहार से परिवार को एक जुट रखना एवं वंश को आगे बढ़ाना है। कविकुलगुरु कालिदास ने 'कुमारसंभवम्' में कहा है कि इस धधकती हुई अग्नि की परिक्रमा कर के वे जोड़े रात और दिन की भाँति हैं, एक-दूसरे से लिपट कर मेरु पर्वत की परिक्रमा करते हैं-

प्रदक्षिणप्रक्रमणात् कृशानो-
रुदर्चिषस्तन्मिथुनं चकासे।
मेरोरुपान्तेष्विव वर्तमान-
मन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम्॥

(कुमारसम्भव, 7.76)

यह समाजशास्त्रीय प्रथा है, जिसे सामाजिक व धार्मिक मान्यता प्राप्त है। इस समाज शास्त्रीय संस्था की छोटी इकाई के कारण समाज का निर्माण होता है। दो आत्माओं का मिलन, दो भावनाओं का एक होना, दो शब्दों के एक होने तथा दो परिवारों का एक होना ही विवाह है।

महाकवि कालिदास ने रघुवंश के मंगलाचरण में ही शिव एवं पार्वती के स्वरूप की व्याख्या कर पति-पत्नी के सम्बन्ध को परिभाषित कर दिया है। वे कहते हैं - वागर्थाविव सम्पृक्तौ अर्थात् जिस प्रकार वाणी ओर अर्थ एक दूसरे से जुड़े हुए रहते हैं, किसी भी परिस्थिति में वे अलग नहीं हो सकते हैं वैसा ही सम्बन्ध पति एवं पत्नी के बीच होना चाहिए।

रघुवंश में ही अज-विलाप के क्रम में उन्होंने अज के मुख से कहलाया है। यह श्लोक सम्पूर्ण रूप से पत्नी को चार रूपों में दर्शाया है- गृहिणी, सचिव, मित्र तथा शिष्या। पत्नी के ये चारों रूप आदर्श हैं।

गृहिणी सचिवः सखी मिथः
प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।
करुणाविमुखेन मृत्युना
हरता त्वां बत किं न मे हृतम्॥

-रघुवंश, 8.67

वस्तृतः भारतीय संस्कृति में विचारों का संगम है और विभिन्न परम्पराओं का अद्भुत समन्वय है। इससे विवाह नाम की संस्था का स्वरूप धार्मिक व आदर्शमय है। वर्तमान परिस्थितियों में यह व्यवसायिक मनोवृत्तियों के प्रभाव से वंचित नहीं है।

21वीं शताब्दी की दुनिया में स्त्रियों और पुरुषों के समलैंगिक संबन्ध को बिना किसी भेद-भाव के स्वीकारा जा रहा है। दंपती गर्भधारण के लिए प्रयोगशाला की सहायता लेने को स्वतंत्र हैं। गर्भपात को पहले की तरह यौन व्यवहारों के समान निषिद्ध नहीं माना जा रहा है। दहेज के अभिशाप और पुराने

अंधविश्वासों के चलते कन्या के जन्म लेने के भय से अल्ट्रासाउंड मशीन का दुरुपयोग कराया जाता है। भ्रूण -हत्या दानवी प्रवृत्ति है।

यह विवाह का संस्कार कानूनी बन्धन नहीं हो कर सामाजिक मूल्यों का समर्थन करता है। पाश्चात्य विचारधारा में विवाह यौन संतुष्टि तथा संतानों के जन्म होने की वैधता के अस्थायित्व के विचार से जुड़ा हैं इस विचारधारा के प्रभाव के कारण बहु पत्नी विवाह,तलाक या संबन्ध-विच्छेद एवं स्वेच्छारिता को बढ़ावा मिल रहा है। हमारी संस्कृति में यह अस्थायी बन्धन नहीं है, जन्म -जन्मान्तर तक साथ रहने वाले जीवन-साथी का चुनाव है, जिसमें समाज, ईश्वर और परम्परा साक्ष्य के रूप में होते हैं। इस विवाह नामक संस्था में अग्नि साक्षी हैं, क्योंकि यह दो शरीरों के बदले आत्माओं का मिलन तथा धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष जैसे पुरुषार्थ को पूरा करने वाले हैं। स्थिति और विकृत होती जा रही है। अवयस्क जोड़े भाग रहे हैं। मोबाइल के दुष्प्रयोग को दोषी ठहराया जा रहा है। अपने बच्चों की गतिविधियों पर अभिभावक ध्यान नहीं दे पाते। उनके पास समय की कमी है और वे संतान उत्पन्न करने के उत्तरदायित्व को समझ नहीं पा रहे।

अभी भी भारतीय समाज में अशिक्षा, निरक्षरता, आर्थिक विषमता, रूढ़ियाँ और अंधी मान्यताएँ शेष हैं। समाज शास्त्रियों के अनुसार लन मैरिज या अरेंज्ड मैरिज में संबन्ध-विच्छेद अधिक हो रहे हैं। विज्ञापनबाजी से जीवन-साथी की गारंटी देने वाली व्यावसायिक संस्था व्यर्थ सिद्ध हो रही हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कन्यादान-जैसी परम्परा के स्थान पर दहेज की कुप्रथा ने जड़ जमा लिया है और कानून बन जाने के इतने वर्षों के बाद भी यह और भयानक हिंसक तथा सौदेबाजी के रूप में है, जैसे कि कन्या कोई वस्तु है और वर बाजार-हाट में बिकने वाले सामान या पशु। दहेज के बाजार में बोल नहीं रख पाने के कारण बहुएं प्रताड़ित होती हैं, आत्महत्या करने को विवश होती हैं। जल कर प्राण त्याग देती हैं या जला दी जाती हैं। उनकी स्वतंत्र इच्छा का समादर नहीं हो पाता है। बेमेल जोड़े बन जाते हैं। कन्या खरीद कर विवाह रचाने का उपक्रम भी देखने को मिल ही जाता है। क्या प्रचलित वैवाहिक पद्धति के बदले स्वयं जीवन साथी की खोज स्वाबलंबी बनने के बाद कर ली गई है या प्रेम होने जैसी नैसर्गिक घटना है तो समाज को व्यक्ति की इच्छा का आदर करना चाहिए? अनुलोम और प्रतिलोम विवाह होता है। हर समाज में पारम्परिक पद्धति के बदले अलग-अलग सामाजिक, धार्मिक और जातीय समूहों मे विवाह करने की घटनाएं होती रहती हैं और पारिवारिक ही नहीं सामाजिक हिंसा का रूप ले कर विद्वेष का वातावरण पैदा करती हैं।

विवाह में माध्यम नहीं है तो व्यक्ति के निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी बनने का खतरा है। हर परिस्थिति में वर-वधू या दूल्हा-दूल्हन के अतिरिक्त दोनों पक्षों के समाज रहें। विवाह को धार्मिक अनुष्ठान से जुड़े होने के कारण धर्म को जीवन एवं अनुभव समझना चाहिए। पाणिग्रहण एवं कन्यादान की संस्कृति में कन्या के विवाह संपन्न होने के बाद के आनंद की अनुभूति को कश्यप ऋषि ने कितना सुंदर वर्णन किया है-

अर्थो हि कन्या परकीय एव
तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं
प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा॥

(अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4.22.

अर्थात् सचमुच कन्या परायी संपत्ति होती है और आज उसे उसके स्वामी के पास भेजने के बाद मुझे लगता है कि मेरी आत्मा बिल्कुल स्पष्ट हो गई है,जैसे की जमा राशि वापस आने के बाद।

शेष पृ. 48 पर

विवाह का स्वरूप व महत्ता

श्री रवि संगम

बिहार पर्यटन-सूचना सामग्रियों के लेखक, भूतपूर्व पत्रकार, पटना। लेखक इन सभी स्थलों पर स्वयं घूमकर बौद्ध-सर्किट के पर्यटन स्थलों पर पुस्तक लिख चुके हैं।

आज विवाह पर जब चर्चा करते हैं तो एक ओर यदि हमें शास्त्रों के ज्ञाताओं का अभिमत जानना चाहिए तो दूसरी ओर हमें ऐसे लोगों का भी मन्तव्य लेना होगा, जो भारतीय शास्त्रों को गम्भीरता से न जानते हुए वर्तमान युवावर्ग को जानते हैं। आखिर युवा वर्ग की क्या सोच है, यह भी विवेचनीय हो जाता है। वे युवावर्ग हमारी परम्परा को किस रूप में देखते हैं तथा वे क्या चाहते हैं इस पर विचार करने के लिए हमने यह आलेख आमन्त्रित किया है। इसके लेखक आधुनिक समाज से घुले-मिले व्यक्ति हैं और अपनी दृष्टि से अपनी प्राचीन परम्परा को देख रहे हैं। इस आलेख में लेखक ने पाश्चात्त्य शिक्षा तथा पाश्चात्त्य मान्यताओं के प्रचार के कारण भारतीय परम्परा को पहुँची हानि का विवेचन किया है। विलासिता, विकृत सेक्स सम्बन्ध आदि ने हमारी परम्परा पर दुष्प्रभाव डाला है, जिससे हमें बचना होगा अन्यथा हम अनेक प्रकार की सामाजिक आर्थिक तथा सांस्कृतिक विषमताओं के जाल में फँसते जायेंगे।

विवाह, प्रेम, समर्पण, शरणागत और मोक्ष-शास्त्रों में वर्णित है यही, मानव जीवन की संपूर्ण यात्रा.....इन से गुजर कर ही बार-बार के आवागमन से मुक्ति मिलती है मनुष्य को.....

शास्त्रों में वर्णित तीन देवताओं का स्मरण करें तो श्रीकृष्ण को कर्म-योग के ज्ञान के लिए, श्रीराम को प्रेम व मर्यादा की स्थापना के कारण और महादेव को जीवन पर्यंत विवाह में संपूर्ण प्रेम निभाने और विश्व कल्याण के लिए याद किया जाता है।

इनमें श्रीकृष्ण व श्रीराम का प्रेम संपूर्णता को प्राप्त नहीं कर पाया। अगर संपूर्ण प्रेम के लिए किसी को श्रेष्ठ माना गया तो वह है महादेव का देवी पार्वती के प्रति प्रेम, समर्पण और उसके लिए साधना तप जो उन्होंने विश्व को सिखाया।

लेकिन आधुनिक काल में विवाह व प्रेम का स्वरूप विकृत हो चुका है। लोग यह पूरी तरह भूल चुके हैं कि ऋषि-मुनियों ने मानव जीवन में विवाह की स्थापना क्यों की थी? उसके पीछे स्वच्छ समाज की स्थापना का क्या उद्देश्य था?

आधुनिक समाज में वैवाहिक रिश्ते आज कई समस्याओं से ग्रस्त हैं। जैसे विवाह पूर्व अभिभावकों द्वारा बच्चों को इसका सही मर्म न समझा पाना, विवाह बाद वासना आधारित संबन्ध, प्रेम का गौण होना, हाई स्पीड जीवन में एक दूसरे का कम समय देना, दहेज पर आधारित संबन्ध में विलासिता का जीवनभर लोभ, पाश्चात्त्य संस्कृति से प्रभावित विकृत सेक्स, एकल परिवार व सोशल मीडिया का दुष्प्रभाव, प्रेम के स्थान

पर भावनात्मक-शारीरिक शोषण — जैसे कई कारण हैं जिनको समझाने-समझने का महत्व कही खो सा गया है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली व धार्मिक मनीषियों द्वारा इस विकृत सांस्कृतिक कुप्रभाव पर अपनी सापेक्ष भूमिका का कम होना भी इसका एक बड़ा कारण है। इन कारणों ने समाज के एक बड़े वर्ग को लगातार निगलता जा रहा है। इस कुसंस्कृति के पीछे अधिकाश समाज का हरेक वर्ग दोषी है।

रिश्तों में विवाह का मूल आधार — शांति, संतोष, प्रेम, समर्पण, सम्मान — अब ग्रंथों किताबों की बात रह गई है। धार्मिक ग्रंथों में इन सभी का सुप्रभाव-दुष्प्रभाव का विस्तार से वर्णन किया गया है — जिससे एक स्वस्थ व खुशहाल समाज की स्थापना हो सके — जिसे लोग प्रायः भूल से गये हैं। अतः इस दिशा में गूढ तथ्यों को सरल तरीके से समाज में पुनः व बार-बार बताने की जरूरत है — जो इस विषय पर आमंत्रित व प्रकाशित लेखन से अपेक्षा है। इस प्रयास के लिए साधुवाद। इस विराट समस्या के समक्ष मेरा यह लघु प्रयास है — जो सभी को ग्राह्य हो।

अध्यात्म में विवाह व प्रेम की महत्ता

सांसारिक दृष्टि से देखें तो वासना पर आधारित विवाह - प्रेम नहीं, जो समर्पण के मार्ग पर आगे ले जाती है। इसलिए तो मनीषियों ने काम-ऊर्जा को आध्यात्मिक ऊर्जा में बदलने का मार्ग दिखाया है। यही वह मार्ग है जो आगे चलकर विशुद्ध प्रेम में परिवर्तित हो जाता है।

संपूर्ण प्रेम हो तो एक स्त्री को आप प्रेयसी, पत्नी, बहन, मां या देवी के रूप में स्वीकार कर सकते हैं - एक साथ। महर्षि रामकृष्ण परमहंस ने जब विवाह किया तो अपनी पत्नी को देखकर उनका पांव छू कर, उन्हें मां के नाम से संबोधित किया था और उसी रूप में वे जीवन भर उन्हें मान देते रहे। आत्मिक शरीर (उच्च मानस शरीर) में रहने वाला यह उच्च योगी समर्पण व शरणागत का प्रतीक रहा पूरे विश्व में। ऐसा होता है समर्पण व शरणागत में प्रेम व विवाह की महत्ता।

विशुद्ध प्रेम पर आधारित विवाह ही वह शाश्वत सत्य हैं जो हमें परमानंद और फिर ब्रह्मानंद के मार्ग पर ले जाता है। राधा-कृष्ण, सीता-राम और देवी पार्वती-महादेव के प्रेम ने हमें यही रास्ता दिखाया। इसे भक्ति मार्ग पर चलते हुए देखे तो इसका अलग रूप है और ज्ञान मार्ग पर चलते हुए इसे देखें तो अलग रूप।

और इसका सबसे बड़ा उदाहरण है तुलसीकृत रामायण और वाल्मीकिकृत रामायण। तुलसीदास ने भक्ति रस में डूब कर इसका वर्णन किया। ऋषि वाल्मीकि ने ज्ञान दृष्टि से देखकर सापेक्ष दृष्टि से इसका वर्णन किया। तुलसीदास को वह दिखा ही नहीं, जिसे वाल्मीकि ने अपने ज्ञान चक्षु से देखा और इसका भी उल्लेख किया कि क्या उचित था और अनुचित। इस तरह हम समझ सकते हैं कि किसी उच्च भावना को हम अपने किस शरीर से देख रहे हैं, उसका अनुभव कर रहे हैं और इसके कारण हमारी प्रतिक्रिया है।

आधुनिक समाज में विवाह में प्रेम गौण

आधुनिक समाज में कोई यह जानने का प्रयास करें कि आखिर प्रेम होता है तो कैसे पता चले, तो इसका एक ही जवाब है - प्रेम वह उच्च भावना है जो धीरे से आकर दिल में निवास करने लगती है और मिलों दूर आगे चलने पर इसका एहसास होता है कि यह प्रेम ही था, जिसे हम उस समय जान नहीं पाए। यानी यह माना जा सकता है की प्रेम की यात्रा में लंबे सफर के बाद ही इसे पूर्णता की प्राप्ति होती है और जब तक यह पूर्ण विशुद्ध प्रेम में परिवर्तित नहीं होता, पता नहीं चलता है।

इसलिए इस यात्रा में सिर्फ समर्पण का भाव रखे तो विशुद्ध प्रेम का प्रस्फुटन स्वत: होने लगता है, लेकिन यह मात्र एक-दो दिन का नहीं है। कभी-कभी तो इसमें वर्षों का समय लग जाता है। चाहे वह किसी मानव से प्रेम हो या ईश्वर से।

और यह भी सच है कि जिसे यह मिल जाता है उसका जीवन हमेशा के लिए सार्थक हो जाता है। और उसे वही मोक्ष के द्वार तक ले जाता है। यहाँ सिर्फ धैर्य व समर्पण की आवश्यकता है, जिस पर हमें विचार करना होगा और अपने को इस मार्ग के लिए तैयार करना होगा। यह तो आप पर है कि आप उसे किस शरीर से स्वीकार करते हैं।

विवाह, प्रेम व काम-वासना

जिस संबन्ध को ऋषि-मुनियों ने विवाह के रूप में एक साथ जीवन-निर्वहन का मार्ग दिखाया - उसे आधुनिक काल में देखें तो यह सुहागरात से शुरू होता है। आजकल का सुहागरात क्या है ? यहाँ जीवन का प्रारंभ वासना, सेक्स से शुरू होता है। फिर बाद में प्रेम हो या ना हो यह गौण हो गया है। इसलिए तो विवाह के बाद भी पुरुष, स्त्री के जीवन में दूसरे (पर) पुरुष, (पर) स्त्री से उस स्तर के संबन्ध की चाहत मिटती नहीं।

यही है आज की अपसंस्कृति, जिसने पूरे समाज को विकृत कर दिया है। यहाँ विवाह के बाद प्रेम का महत्व गौण हो गया है तो फिर समर्पण व शरणागत की स्थिति का एहसास कैसे होगा। इसलिए तो मनुष्य जन्म -जन्मांतर भटकता रहता है मोक्ष की तलाश में। ना प्रेम मिलता है, ना समर्पण का भाव, ना शरणागत की स्थिति और ना मोक्ष की प्राप्ति।

विवाह समझना है तो यह भी समझना होगा कि स्त्री, पुरुष के शरीर का मिलन सिर्फ एक नए सृजन का एक माध्यम है - सृष्टि के विकास के लिए। लेकिन यह वासना से अभिभूत और अनियंत्रित होने लगे तो सभी संतुलन नष्ट हो जाता है। इसे समझने के लिए शास्त्रों में एक कथा का उल्लेख है। कथा है-

पौराणिक काल में एक महान पराक्रमी राजा थे। जिनका स्वर्ग तक आना-जाना था। इसी क्रम में उन्होंने स्वर्ग की अप्सरा मेनका को देखा और उस पर मोहित हो गए। उन्होंने मेनका से प्रणय निवेदन किया और वचन दिया कि यदि वह उनसे विवाह कर ले तो वे उन्हें वह सुख भी देंगे, जो उनको स्वर्ग में नहीं मिलता। इस पर मेनका बड़े धर्म-संकट में पड़ गई। क्या करें क्या ना करें, अंतत: उन्होंने राजा का हठ देखकर कहा कि ठीक है वे इसकी अनुमति जाकर इंद्र से लें। जब राजा इंद्र के पास गए तो इंद्र ने कहा कि यह संभव नहीं कि कोई स्वर्गलोक का वासी पृथ्वी पर वास करे। यह तभी संभव है जब इसके लिए सृष्टि रचयिता ब्रह्मा इस का वरदान दे। यह सुनकर वह राजा पृथ्वी पर लौट आए और एक हजार वर्ष तक तप किया। अंतत: ब्रह्मा प्रगट हुए प्रकट हुए और उनकी मनोकामना पूर्ण होने का वरदान दिया।

इसके बाद वह राजा और अप्सरा मेनका पति-पत्नी के रूप में रहने लगे। कई वर्ष बीत गए। राजा का मेनका के रूप के प्रति आकर्षण कम ही नहीं होता था। धीरे-धीरे राजा को एहसास होने लगा कि आखिर यह शरीर का आकर्षण कम क्यों नहीं होता। फिर उन्हें इस स्थिति से वितृष्णा होने लगी। इसलिए कि मेनका के आकर्षण में वे कर्म से पूरी तरह विमुख हो चुके थे। अंतत: इससे मुक्ति के लिए वे फिर तपस्या के लिए बैठ गए।

फिर एक हजार वर्षों तक तप करने के बाद ब्रह्मा प्रसन्न हुए और पूछा कि अब क्या चाहते हो। राजा ने कहा कि इतने लंबे प्रवास के बाद भी मैं मेनका को पूर्णत: क्यों नहीं पा सका। बस इतना ही आपसे जानना चाहता हूं। ब्रह्मा ने कहा कि तुम्हें मेनका से प्रेम तो कभी हुआ ही नहीं, फिर उसका तुम्हारे प्रति पूर्ण

समर्पण कैसे होता। तुम तो उसके साथ जब भी रहे वासना से अभिभूत रहे, इसके सिवा तुम्हें कुछ दिखा ही नहीं। यह सुन राजा को अपनी गलतियों का एहसास हुआ।

उन्होंने फिर पूछा कि इसमें मुझे क्या करना था, जो मैंने नहीं किया। तो ब्रह्मा जी ने बताया कि वासना अनंत है, इसलिए तुम अनंतकाल तक मेनका के साथ प्रवास के बाद भी संतुष्ट नहीं हुए। यहाँ वासना का दमन नहीं नहीं करना था, बस उसे नियंत्रित करना था। इसलिए कि जिस प्रबल इच्छा को जितना दबाओगे वह दुगुने वेग से और प्रबल होगा। इसलिए किसी भी इच्छा को अच्छे-बुरे की कसौटी पर तौलने के बाद, उसे नियंत्रित करना ही सही रास्ता है। यानी जो वस्तु या भावना आत्म-संतुष्टि ना दे, उसे दमन ना करके नियंत्रित करना चाहिए। यह रहस्य जानकर वह राजा पुनः राजमहल में लौटे और मेनका को सब बता कर उन्हें पुनः स्वर्ग लौटने का आग्रह किया। उसके बाद सारा वैभव त्यागकर वन में चले गए और बाकी जीवन ईश्वर की आराधना में व्यतीत किया।

इस कथा का यहाँ उल्लेख इसलिए आवश्यक था कि आधुनिक समाज को यही समझना है। वासना, प्रेम का स्थान ले ही नहीं सकता। फिर प्रेम, समर्पण मिले तो कैसे मिले। कलयुग में मानव ने आध्यात्मिक प्रेम के मर्म को भुला दिया जो ऋषि-मुनियों ने वैदिक काल में स्थापित किया था। और इसे विभिन्न ग्रंथों में लिखकर मानव समाज को समझाने का प्रयास किया था।

प्रेम, समर्पण, शरणागत, मोक्ष के मार्ग में कहीं न कहीं सूक्ष्म रूप से काम भावना, वासना का भी स्थान है तभी तो अधिकांश ऋषि-मुनियों ने विवाह किया और इसी मार्ग पर चलते हुए गौतम बुद्ध ने संतान को जन्म दिया। जिसने सृष्टि के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। लेकिन प्रेम से मोक्ष के मार्ग में वासना को नियंत्रित करने की सापेक्ष दृष्टि आवश्यक है, वरना सभी संतुलन बिगड़ जाएगा। ईश्वर ने इसलिए मानव के कठोर परीक्षण के लिए रति-कामदेव की उत्पत्ति की कि मानव के अंतर्मन में वासना रूपी पशु को नियंत्रित कर, देवत्व के मार्ग पर कैसे लगाये। सूक्ष्म रूप से देखे तो यही है काम-ऊर्जा को आध्यात्मिक ऊर्जा में बदलने का मार्ग।

इसे एक छोटे से उदाहरण से समझ सकते हैं एक राजनेता और एक सैनिक का देश व समाज के प्रति प्रेम व समर्पण। दांपत्य जीवन का पालन करते हुए भी देश के लिए सर्वस्व न्योछावर करने का उदाहरण। यहाँ भी प्रेम है, समर्पण है, वासना है लेकिन नियंत्रित है, प्रेम व समर्पण ही प्रबल है। तभी तो सैकड़ों-हजारों राजनेता, समाजसेवियों, वैज्ञानिकों, सैनिकों ने देश व विश्व के कल्याण के लिए अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया और इतिहास के स्वर्णिम पन्नों में दर्ज हो गए। अब इसे अध्यात्म के मार्ग पर चलकर समझे या आधुनिक काल के उदाहरण से समझें यह व्यक्ति विशेष पर निर्भर है।

प्रेम और अपराध

यदि प्रेम शब्द को हम परिभाषित करने बैठते हैं, तो जेहन में कुछ ही शब्द आते हैं।.....समर्पण, त्याग, स्त्री-पुरुष के अस्तित्व से परे दो आत्माओं का मिलन, दिव्यता की अनुभूति..... और इससे संबन्धित कोई छवि उभर कर आती है तो वह है।.... राधा-कृष्ण और मीरा की छवि। किन्तु यह दिव्य अनुभूति प्रेम की सीढ़ी का अंतिम छोर है। जैसे-जैसे हम इन सीढ़ियों से नीचे उतरने लगते हैं, वहीं से शुरू होता है मानवीय प्रेम और फिर प्रेम का स्वरूप बदलता चला जाता है। आत्मा से महत्वपूर्ण शरीर हो जाता है। दो आत्मा नहीं, स्त्री और पुरुष का प्रेम हो जाता है। त्याग और समर्पण से ज्यादा एक दूसरे के प्रति आशाएं, उम्मीदें, बन्धन, अधिकार जैसे भाव जन्म ले लेते हैं।

सामाजिक मान्यता के अनुसार प्रेम का अंतिम चरण विवाह को माना जाता है । विवाह के बाद प्रेम का स्वरूप निरंतर बदलता चला जाता है। मानव मन इसमें उलझ कर रह जाता है कि..... यह प्रेम है या प्रगाढ़ रिश्तों की जिम्मेदारियां।.....? 'प्रगाढ़ ' शब्द के मूल में तो प्रेम ही होता है। यह 'प्रगाढ़' ही बन्धन या रिश्तो में बदलता है तो प्रेम का स्वरूप भी पूरी तरह से बदल जाता है। और फिर व्यक्ति ऊपरी सीढ़ी से निचली सीढ़ी की ओर जैसे-जैसे उतरता है तब प्रेम करने या होने से ज्यादा 'निभाने' की प्रक्रिया शुरू हो जाती है।

प्रेम की प्रक्रिया इसी 'निभाने' के पथ पर निरंतर आगे बढ़ती रहती है। जब तक यह सीमा रेखा में रहती है, तब तक तो सब कुछ ठीक रहता है, किन्तु जैसे ही है सीमा क्षेत्र से अत्यधिक आगे बढ़ती है अर्थात प्रेम में जब भावनाओं से महत्वपूर्ण शरीर हो जाता है, त्याग की जगह एक दूसरे से उम्मीदें, आशाएं जन्म लेने लगती हैं, समर्पण के स्थान पर अधिकार की बातें होने लगती हैं, अस्तित्व की स्वतंत्रता बन्धनों में जकड़ने लगती है तब वहीं से अपराध के पौधे पनपने लगते हैं।

वर्षों से चला आ रहा यह वक्तव्य की.... " प्यार किया नहीं जाता हो जाता है।" प्रेम की भावपूर्ण परिभाषा है। सचमुच में व्यक्ति जानबूझकर या सोचकर किसी से प्रेम नहीं करता है। यह एक ऐसी भावनात्मक प्रक्रिया है जो स्वयं ही उत्पन्न हो जाती है। जब लड़का और लड़की को एक दूसरे से प्रेम हो जाता है तो उस समय के प्रेम का स्वरूप सिर्फ भावनात्मक होता है और वही लड़का और लड़की जब विवाह के बन्धन में बँध जाते हैं तो उस समय के प्रेम और विवाह से पूर्व के प्रेम में जमीन-आसमान का अंतर हो जाता है। विवाह से पूर्व दोनों किसी बन्धन में नहीं होते, किसी अधिकार की कल्पना नहीं होती, कोई उम्मीद नहीं, कोई आशा नहीं।...सिर्फ प्रेम होता है।

तथ्य यह भी है की जब लड़का और लड़की विवाह के बन्धन में नहीं भी बँधते हैं तब भी समय के साथ उनकी उम्मीदें, आशाएं और अधिकार बढ़ने लगते हैं। धीरे-धीरे वे एक दूसरे के बारे में जानने-समझने लगते हैं, एक दूसरे को परखने लगते हैं, और जब तक यह सीमा रेखा में रहती है तब तक तो प्रेम बना रहता है लेकिन जैसे ही वह सीमा रेखा को लांघते हैं वहीं से प्रेम का स्वरूप विकृत होने लगता है।

बहुत सारी घटनाएं हमने ऐसी सुनी है कि किसी प्रेमी ने प्रेमिका की हत्या कर दी या प्रेमिका ने प्रेमी की हत्या कर दी तो यहाँ पर वही प्रेम का विकृत रूप होता है जब आशाएं, उम्मीदें, अधिकार की मांग व्यक्ति एक दूसरे से करने लगता है और अपने अहम को बहुत ज्यादा महत्व देता है। आपसी समझ खत्म होने लगती है। इस तरह के बहुत सारे कारण हैं जो प्रेम में अपराध को जन्म देते हैं।

आज हमारे समाज में अपराध के अन्य कारणों में प्रेम संबन्धी अपराधों की संख्या बढ़ी है। प्रारंभ से ही चली आ रही अभिभावकों द्वारा किए गए विवाह की परम्परा से असंतुष्ट होकर लोग अपनी मर्जी से विवाह यानी 'प्रेम विवाह' करने लगे हैं किन्तु जो समस्यायें अभिभावकों यानी माता-पिता द्वारा किए गए विवाह से थी - वह प्रेम विवाह में भी कहीं से कम नहीं हुई। बदलते वक्त ने इन दोनों प्रथाओं को छोड़कर बन्धनरहित विवाह को स्वीकृति दे दी यानी "लिव इन रिलेशनशिप". पर समस्याएं तो वही रहीं, अपराध में कमी नहीं आई। यदि स्त्री-पुरुष के प्रेम के प्रति इस सोच को बहुत गहराई से देखते हैं तो इसके बहुत सारे कारण हैं जहाँ प्रेम गौण हो गया है और मानवीय उलझनें, समस्याएं उभर कर ऊपर आती जा रही हैं।

एक दूसरे के प्रति विश्वास, सम्मान और समझदारी का अभाव

प्रेम-प्रसंगों आधारित विवाह से जुड़े अपराधों के बढ़ने का मुख्य कारण यह है कि वर्तमान समय में

युवाओं का जिस तरह से व्यक्तित्व निर्माण हो रहा है उसमें वे स्वतन्त्र, बिंदास, स्वच्छन्द जैसे शब्दों को लक्ष्य बनाकर ही जीना पसंद करते हैं ।

भीड़-भाड़, चकाचौंध और विलासिता के प्रति आकर्षित और अहम भाव से ओतप्रोत होकर जब वह किसी से प्रेम करते हैं तो यहाँ त्याग और समर्पण जैसे शब्दों का कोई अस्तित्व नहीं होता। एक दूसरे के सामने कोई झुकने को तैयार नहीं होता है। और जब एक दूसरे के प्रति सम्मान और समझदारी का अभाव रहेगा तो इस तरह के मामले बढ़ेंगे हीं। एक दूसरे के प्रति विश्वास की कमी, छोटी-छोटी बातों पर बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ और एक दूसरे पर विश्वास खोना जैसे कारण प्रेम संबन्धों को कमजोर बनाने में अहम भूमिका निभाते हैं और हत्या जैसे जघन्य अपराध को जन्म देते हैं।

लिव-इन-रिलेशनशिप

वास्तव में वैवाहिक समस्याओं को देखते हुए ही लिव-इन-रिलेशनशिप जैसी धारा हमारे समाज में उभर कर सामने आई है, किन्तु इस धारा ने प्रेम और विवाह जैसे पवित्र रिश्ते को क्षति पहुँचाने के साथ-साथ अनेकों सवाल खड़े कर दिए हैं। वर्तमान समय में नई पीढ़ी बन्धन रहित रिश्ते, जिम्मेदारियों को बिना ओढ़े, शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए लिव-इन-रिलेशनशिप में रहना चाहते हैं। ऐसे में यदि कोई गलतफहमी या आपसी समझदारी में कमी या फिर मामूली नोकझोंक भी इन्हें हिंसक बनाते हैं।

सच पूछें तो किसी रिश्ते को स्वस्थ बनाने के लिए परिवार का होना बहुत ही आवश्यक होता है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि परिवार के बड़े-बुजुर्ग मनोवैज्ञानिक बनकर जोड़े को जीवन के उतार-चढ़ाव, ऊँच-नीच इत्यादि तथ्यों से रू-ब-रू कराते हैं और उचित सलाह देते हैं जिसके कारण उनके रिश्ते की डोर मजबूत बनी रहती है। किन्तु इस रिश्ते में कोई किसी को देखने या समझाने वाला नहीं होता है। यह जोड़े अपनी मर्जी के मालिक होते हैं और अपने अहम को पोषित करने में लगे रहते हैं जिनके कारण तनाव बढ़ता है और अपराध करने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। लिव-इन-रिलेशनशिप को वैधता मिल जाने के कारण अपराधिक मामलों में बढ़ोतरी हो रही है।

सोशल मीडिया

प्रेम प्रसंगों से जुड़े अपराध बढ़ने का एक कारण सोशल मीडिया भी है। एक कच्ची उम्र के हाथ में यदि मोबाइल फोन नामक पूरी दुनिया उसके हाथ में थमा दी जाए तो वह उन चीजों से भी रूबरू होता है जिसकी उम्र अभी नहीं हुई है। कच्ची उम्र गीली मिट्टी के समान होती है और यदि उसे गलत सांचे में रख दिया जाए तो उसका आकार विकृत नहीं होगा तो और क्या होगा।

नई पीढ़ियों की मानसिकता प्रेम व विवाह के प्रति बिल्कुल बदल गई है। प्रेम व विवाह उनके लिए एक अमोद-प्रमोद का साधन बन चुका है। ज्यादातर स्थितियों में कभी फिल्में देखकर, कभी बदला लेने के लिए या कभी अपने दोस्त से बाजी लगाने के लिए प्रेम प्रकट करते हैं। यह सभी उदाहरण प्रेम का विकृत रूप ही है।

आज के समय में यदि हम स्कूल में देखें तो अक्सर देखते हैं कि नवीं, दसवीं या प्लस टू के बच्चों में मारपीट या हिंसा होती है और ज्यादातर कारणों में हिंसा का कारण एक लड़की ही होती है। साथ ही अश्लील फिल्में, अश्लील प्रचार, अश्लील मॉडलिंग, फैशन शो का नंगापन, अश्लील पोशाकें मानव को फिर से आदिम युग की तरफ ढकेल रही हैं। ऐसे में मानसिकता पशुओं की तरह नहीं होगी तो और क्या होगी। फिर वहाँ प्रेम का कैसा रूप होगा या फिर प्रेम का कैसा स्थान होगा- यह बहुत बड़ा सवाल है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में युवाओं को सोशल मीडिया से दूर

रखना असंभव है। प्रेम के साथ जुड़े अपराध का यह एक बहुत बड़ा कारण है।

माता पिता की भूमिका

बच्चे के व्यक्तित्व निर्माण में उनके माता-पिता का कितना महत्वपूर्ण स्थान है इस बात को बहुत कम ही माता-पिता समझ पाते हैं। एक बच्चे के अच्छे भविष्य की कामना करना और उनकी सभी आवश्यकताओं को पूरी करना शायद इसे ही माता-पिता अपनी जिम्मेदारी समझते हैं।

किन्तु अब समय बदल चुका है माता-पिता को अपने बच्चों के दिनचर्या पर एक तीक्ष्ण निगाह रखनी होगी, किन्तु इस बात की सतर्कता रखते हुए कि बच्चे को यह न लगे कि हर समय उनके माता-पिता की आंखें उनके ऊपर लगी हुई है, क्योंकि यह उनके व्यक्तित्व निर्माण में बाधक सिद्ध होगा।

उनके व्यक्तित्व निर्माण में संस्कारों की भूमिका क्या है यह उन्हें भलीभांति समझाना होगा। एक स्वस्थ वातावरण देने के लिए माता-पिता को निरंतर प्रयास करने की आवश्यकता है। सिर्फ बच्चों की मांगों को पूरा करना ही उनका उत्तरदायित्व नहीं है। उन्हें एक अभिभावक के साथ-साथ एक दोस्त भी बनना पड़ेगा, ताकि उनके मन के भीतर क्या चल रहा है इसका उन्हें ज्ञान हो। क्योंकि यदि बच्चों को अपने माता-पिता दोस्त की तरह नहीं लगेंगे तो वह अपने मन की बातों को कभी भी उनसे बांटने का प्रयास नहीं करेंगे। यह माता पिता पर ही निर्भर करता है कि वह कितने सक्षम है अपने बच्चों को एक स्वस्थ वातावरण देने के लिए। यदि वे उन्हें समाज में एक डॉक्टर, इंजीनियर बनाने के लिए प्रयासरत हैं तो उन्हें एक अच्छा इंसान बनाने के लिए भी प्रयासरत होना चाहिए। सही लालन-पलन ना होने के कारण ही बच्चे भावनात्मक रिश्तों को समझ नहीं पाते हैं और वही आगे जाकर उन्हें मनमानी करने में मदद करती है।

एकल परिवार

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में एकल परिवार कहीं ना कहीं व्यक्तित्व में भावनात्मक तत्वों के अभाव का कारण बनता जा रहा है।

जब संयुक्त परिवार होता था तो परिवार में माता-पिता, दादा-दादी, चाचा-चाची के बीच में पलकर जो बच्चा बड़ा होता था वह भावनात्मक रिश्ते-नातों या प्रेम-स्नेह के हर रेशे को पूरी तरह से पहचानता था।

एकल परिवार के बच्चे रिश्ते-नातों के महत्व को बहुत अधिक समझ नहीं पाते हैं। शुरुआत से ही उन्हें "टू द प्वाइंट" जीने की शिक्षा दी जाती है, वह यह कि वह शुरुआत के दिनों में सिर्फ अपने कैरियर के बारे में सोचें और आने वाले दिनों में जब उनका अपना परिवार... बीवी और बच्चे हो तो उनके बारे में सोचें। दूसरा पक्ष यह है कि वह अपने माता-पिता को भी उसी तरह से जीते हुए देखते हैं। जिसका परिणाम यह होता है की बच्चे आत्म केंद्रित और स्वार्थी बनते जा रहे हैं। वहाँ पर भावनात्मक रिश्तो या प्रेम का महत्व गौण हो जाता है। प्रेम की भाषा से वह परे होते जाते हैं और अंत में यह भी होता है कि मां-बाप भी उनके लिए महत्वहीन हो जाते हैं। ऐसा व्यक्तित्व अपनी पत्नी या प्रेमिका के प्रति किस तरह का प्रेम भाव रख सकता है यह सोचनीय प्रश्न है।

पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित

हमारे समाज में उच्च वर्ग पूरी तरह से पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित है। इस होड़ मे मध्यमवर्ग भी शामिल हो चुका है। और ऐसे में उसकी पूरी कोशिश रहती है कि वह वही तौर तरीका अपनाएं जो पाश्चात्य संस्कृति में अपनाई जाती है।

खानपान, पोशाक, भाषा, रहन-सहन, रिश्ते-नाते, इन सब पर पाश्चात्य संस्कृति का अत्यधिक प्रभाव है।

इस होड़ ने इंसान-इंसान के बीच आत्मीयता को नष्ट कर दिया है।

रिलेशनशिप में भी पाश्चात्य संस्कृति की बु आने लगी है। लंबे समय तक किसी से विवाह में भावनात्मक संबन्ध नहीं रख पाना इसी का देन है। लिव -इन-रिलेशनशिप भी पाश्चात्य संस्कृति की ही देन है। आज का युवा पीढ़ी पाश्चात्य संस्कृति से इतना प्रभावित है कि वह परम्परा, संस्कार, नैतिकता से पूरी तरह से अनभिज्ञ होता जा रहा है। आज रिश्तेदारों से ज्यादा उसे मोबाइल फोन और लैपटॉप पसंद है। मधुर संबन्धों के स्थान पर ऑनलाइन रहना उसे अधिक भाता है। जो उसे घर में बैठे वह सारी चीजें उपलब्ध करा रहा है। जिसकी जरूरत उसे अभी उस कच्ची उम्र में नहीं है।

उसे दुनिया के हर पहलू से रूबरू कराता जा रहा है। एक तरफ तो वह सकारात्मक ज्ञान अर्जित कर रहा है, तो दूसरी तरफ नकारात्मक ज्ञान से भी वह परिचित हो रहा है। ऐसे में यदि सही व्यक्तित्व का निर्माण नहीं हो बच्चे में, तो नकारात्मक पहलुओं की तरफ उसका झुकाव बढ़ता चला जाएगा।

अभिभावक इस से अनभिज्ञ है कि युवा पीढ़ी ऑनलाइन के मकड़जाल में फंसती जा रही है और वह ऐसी खतरनाक घटनाओं को अंजाम दे रही है जिनके बारे में हम कल्पना भी नहीं कर सकते। अभिभावकों को चाहिए कि वह अपनी संतानों पर पूर्ण फोकस रखें। युवा पीढ़ी को भी चाहिए कि वह ऑनलाइन से संबन्धित भ्रामक और झूठे रिश्तों के चक्कर में पड़कर अपना कैरियर बर्बाद ना करें। आंखें मूँदकर ऐसे रिश्तों को ना अपनाएं और अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन करें तभी इस प्रकार के अपराधों पर अंकुश लगाया जा सकता है।

वासना को प्रेम समझने की भूल

अक्सर लोग विवाह में वासना को प्रेम समझने की भूल कर बैठते हैं। जिसे वह प्रेम समझते हैं वास्तव में वह शारीरिक आकर्षण होता है और धीरे धीरे जब यह शारीरिक आकर्षण समाप्त होने लगता है तो रिश्तो में विवाद शुरू हो जाते हैं। रिश्ते टूटने के कगार पर आ जाते हैं और फिर अलग तरह की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती है। परिणामस्वरूप यहाँ पर एक दूसरे को नुकसान पहुंचाने की कोशिश की जाती है। यही प्रवृत्ति धीरे-धीरे आपराधिक मामलों में बढ़ोतरी करती जाती है।

विपरीत लिंगी के प्रति आकर्षण सामान्य बात है। किन्तु यह प्रेम नहीं होकर शारीरिक आकर्षण होता है। ऐसे रिश्ते में अक्सर जिम्मेदारी का अभाव होता है एवं जब जिम्मेदारी लेने की बात आती है तो दोनों में छोटी-मोटी बात पर टकराव होना शुरू हो जाता है। यह प्रेम प्रसंग से जुड़े मामलों में अपराध का मुख्य कारण होता है।

अंतरजातीय विवाह भी चारित्रिक पतन के दायरे में

आज के इस आधुनिक समाज में भी अंतरजातीय विवाह की स्वीकृति का प्रतिशत बहुत ही कम है। समाज के एक बड़े तबके में अंतरजातीय विवाह को स्वीकार नहीं किया जाता है। लड़का या लड़की द्वारा लिया गया स्वतंत्र फैसला परिजनों द्वारा नामंजूर कर दिया जाता है। ऐसे मामलों में अक्सर सुनने को मिलता है कि परिजन हिंसा पर उतारू हो गए हैं।

गुरु नानक देव विश्वविद्यालय के असिस्टेंट प्रोफेसर सतनाम सिंह देओल के द्वारा 2005 से 2012 के बीच ऑनर किलिंग पर किए गए अध्ययन के अनुसार 44% मामलों में अंतरजातीय विवाह की वजह से हत्याएं हुई हैं। अध्ययन के मुताबिक 56% परिवारों को लड़के या लड़की द्वारा लिया गया स्वतंत्र फैसला रास नहीं आया।

सामाजिक-पारिवारिक अस्वीकृति हीं बनती है असंतुष्टि का कारण

यदि मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से हम देखें तो जीवन में हम जिससे प्रेम करते हैं वह यदि नहीं मिले और हमें जबरदस्ती किसी अन्य से विवाह के बन्धन में बांध दिया जाए तो वहाँ धीरे-धीरे पारिवारिक असंतुष्टि उत्पन्न होने लगती है। यही असंतुष्टि धीरे-धीरे मानसिक बीमारी बनती है, और अपराध की ओर अग्रसर होती है। अपराध के अधिकतर किस्से इसी प्रेम की असंतुष्टि के कारण मिलते हैं।

मन-मुताबिक साथी का ना मिलना और जबरदस्ती ऐसे रिश्तो में बांध देना जिसके लिए युवक और युवती मानसिक रूप से तैयार नहीं होते हैं। ऐसे रिश्ते में कृत्रिम प्रेम ही पनपते हैं और जहाँ कृत्रिम प्रेम हो वहाँ असंतुष्टि का होना तो स्वाभाविक है।

ऐसे में व्यक्ति की सोच अपने साथी के प्रति नकारात्मक होती चली जाती है। ज्यादातर विवाहेत्तर प्रेम संबन्धों का कारण यह असन्तुष्टि हीं है। इसके कारण हिंसा के अनेक रूप देखने को मिलते हैं।

उदाहरणस्वरूप- पत्नी ने अपने प्रेमी के साथ मिलकर पति की हत्या कर दी या फिर पति ने अपनी प्रेमिका के साथ मिलकर पत्नी की हत्या कर दी। पति ने अपनी पत्नी के साथ हिंसक व्यवहार किया। पत्नी की बेवफाई के कारण पति ने हत्या कर दी या फिर पति के बेवफाई के कारण पत्नी ने हत्या कर दी। ऐसे हजारों किस्से हमेशा ही सुनने को मिलते हैं।

प्रेम संबन्धों में धार्मिक प्रवेश

यह तो बहुत पुरानी कहावत है कि।..... "प्रेम अन्धा होता है" न वह उम्र देखता है, न जाति, न धर्म, न अमीरी, न गरीबी। वह तो बस हो जाता है। किन्तु प्रेम संबन्धों को तो हमेशा से ही जाति के साथ-साथ धर्म की कसौटी पर भी तौला जाता रहा है। इतिहास में ऐसे हजारों किस्से मिलते हैं और वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी। आज हमारे समाज में 'लव-जेहाद' के नाम पर अनेकों नृशंस हत्याएं हो रही हैं। कहीं ना कहीं धर्म के आधार पर प्रेम को विकृत बनाया जा रहा है।

हमारे समाज में अंतरजातीय विवाह की ही स्वीकृति में इतनी कमी है तो अंतरधार्मिक विवाह का तो लोग कल्पना भी नहीं करते हैं। ऐसा नहीं है कि इस तरह के प्रेम विवाह नहीं हुए हैं, किन्तु इनका प्रतिशत बहुत ही कम है। अपराध के ऐसे अनेकों मामले आए हैं जहाँ अंतरधार्मिक प्रेम विवाह हुए हैं। दोनों ही परिस्थितियों में अपराध के उदाहरण मिले हैं या तो युवक-युवती धर्म अलग होने के कारण आपसी तालमेल नहीं बिठा पाए जो अपराध का कारण बना या फिर समुदाय के द्वारा उनकी हत्या कर दी जाती है।

आंकड़े क्या कहते हैं....?

विवाह व प्रेम प्रसंग के कारण होने वाली हत्या की दर बीते डेढ़ दशक में बढ़ी है। एनसीआरबी (राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो) के आंकड़े बताते हैं कि बीते कई वर्षों में हमारे देश में हत्या के मामले में कमी आई है लेकिन इसी अवधि में प्रेम संबन्धों के मामले में, हत्या में बढ़ोतरी हुई है। हाल में जारी एनसीआरबी के आंकड़ों से पता चलता है कि 2001 से 2017 के बीच प्रेम प्रसंग में होने वाली हत्या की दर सबसे अधिक रही है।

आंकड़ों से स्पष्ट है कि हत्या के मामलों में लैंगिक अपराध बहुत बड़ा कारण बन चुका है इनके पीछे राजनीतिक और सामाजिक विषमता हीं प्रमुख कारण है। प्रेम संबन्धों में सबसे बड़ी अड़चन जाति, वर्ग और धर्म है इसी वजह से व्यक्ति विशेष की हत्या तक हो जाती है। विवाह व प्रेम संबन्धों से नाराज होकर परिजनों द्वारा ही हत्या करने का चलन, देश के विभिन्न हिस्सों में आज भी जारी है। इससे जुड़ी खबरें रोजाना सुर्खियों में होती हैं।

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो द्वारा जारी आंकड़ों ने अपराधों की रोकथाम के लिए ठोस कदम उठाने की आवश्यकता को बताया है। इनमें एक श्रेणी वैसी हत्याओं की है जो प्रेम संबन्ध, विवाह, विवाहेत्तर संबन्ध आदि से जुड़ी हैं, ऐसी हत्याएं जिस गति से बढ़ रही हैं जल्दी ही व्यक्तिगत शत्रुता व संपत्ति विवाद के कारण होने वाली हत्याओं की संख्या को पीछे छोड़ सकती हैं। इसकी शिकार ज्यादातर महिलाएं ही हैं। हमारे देश में ही नहीं विश्व में भी कमोबेश स्थिति ऐसी ही है।

जिस तरह से हमारी संकीर्ण और रूढ़ीवादी मानसिकता मानवीय मूल्यों और भावनात्मक संबन्धों को दरकिनार कर अपने ही परिजनों की नृशंस हत्या की तरफ अग्रसर हो रहे हैं, साथ हीं दूसरों पर भी दबाव डाल रहे हैं इस ओर अग्रसर होने के लिए,यह हमारे वर्तमान और भविष्य को कहीं ना कहीं कलंकित और विकृत बना रही है।

***

लेखकों से निवेदन

धर्मायण का आगामी पौष मास का अंक **"लोकाचार-विशेषांक"** के रूप में प्रस्तावित है। सनातन परम्परा में लोकाचार की मान्यता रही है। मनुस्मृति ने इसे 'सदाचार' कहा है। अन्य स्मृतिकार तथा पुराणकार भी इसे धर्म के एक साधन के रूप में मान्यता दे रहे हैं। महाभारत का कथन है- **धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः। द्वितीयं धर्मशास्त्राणि तृतीयं लोकसंग्रहः॥** (महाभारत, कुम्भकोणम् संस्करण, 14.10.42) आम जनता से धर्म को जोड़ने के लिए लोकाचार पर विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है। लोकाचारात् स्मृतिर्ज्ञेया स्मृतेश्च श्रुतिकल्पनम् की जो प्रक्रिया है उसे आज प्रचारित किया जाए तो हम पूरे समाज के साथ एक धरातल पर समरस प्रतीत होंगे। यह सामाजिक समरसता का कारक तत्त्व सिद्ध होगा। भारत के हर क्षेत्र में ऐसे अनेक लोकाचार हैं, जो सीधे किसी न किसी धार्मिक मान्यता से जुड़े हैं। लोक की धारा निरन्तर गतिशील है। ऐसे अनेक धार्मिक कृत्य हैं जो केवल लोक परम्परा में हैं उनका शास्त्र में उल्लेख नहीं है। **विगत शती से हमने उन्हें अवैदिक करार कर "लोक" को खो दिया है।** किन्तु हम विचार करें तो 'विरुद्ध' शब्द का अर्थ अनुल्लेख नहीं होता है। अतः यदि लोकाचार का उल्लेख वेद में नहीं हो तो उसे हम वेद-विरुद्ध नहीं मान सकते। लोक-देवताओं की भी यही स्थिति है। यद्यपि लोकाचार इतना विशाल है कि उसे एक अंक में समेट पाना मुश्किल है। लोकाचार की शास्त्रीय मान्यता का विवेचन सर्वप्रथम अपेक्षित होगा। मनु, तथा याज्ञवल्क्य ने इसके महत्त्व को लिखा है। पारस्करगृह्यसूत्र में भी "लोकात्' लिखकर लोकाचार की मान्यता दी गयी है। यहाँ तक कि व्याकरण में पतंजलि ने लिंगनिर्णय में लोक को ही प्रमाण मान लिया है। अतः इस समूह के सभी विद्वान् लेखकों से निवेदन है कि महावीर मन्दिर पटना से प्रकाशित "धर्मायण" पत्रिका के पौष मास के अंक हेतु अपने-अपने क्षेत्र के लोक-देवता पर केन्द्रित आलेख भेजें।

***

जड़ों से कटती वैवाहिक प्रणाली

प्रीति सिन्हा

शिक्षा-मनोविज्ञान में स्नातकोत्तर एवं बाल-मनोविज्ञान एवं निर्देशन में नालंदा विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान। शिक्षिका व उपप्राचार्या के पद पर 21 वर्षों का कार्य अनुभव। बाल मनोविज्ञान निर्देशन में 'बाल समस्या निदान' हेतु कई वर्षों का विशिष्ट कार्य अनुभव। राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में सामाजिक समस्या (रहन सहन, अपराध, योग), कविताएं, कहानियां, यात्रा संस्मरण, समीक्षा, त्योहार, फिल्म समीक्षा व मनोविज्ञान पर कई आलेख प्रकाशित। पता- द्वारा, संजय सिंह, आर. के. एम. लेन , नाला रोड़ , लंगर टोली गली , अकबरपुर कोठी , पटना – 800004 (बिहार)

विवाह के विविध पक्ष पर तब तक विवेचन पूर्ण नहीं माना जायेगा, जब तक कि हम नारीवादी दृष्टिकोण से विवाह का विवेचन न करें। आखिर आधुनिक नारियाँ क्या सोचती हैं? भले हम इनके अभिमत को यथावत् मानने से इन्कार कर दें, किन्तु पूर्वपक्ष के रूप में ही सही, हमें इनके विचारों का अवलोकन करना होगा। हमें प्रसन्नता है कि लेखिका ने यह माना है कि हम विवाह तथा वैवाहिक सम्बन्ध को लेकर विकृति की ओर बढ़ रहे हैं, जो समाज की उन्नति के लिए खतरा है। इस आलेख की सबसे बड़ी विशेषता है कि लेखिका ने आधुनिक नारीवादी सोच लेकर हमारी भारतीय परम्परा पर आक्षेप लगाये हैं, वे यदि सही हैं तो हमें उन्हें हमें परिमार्जित करना होगा। अतः इस पूरे आलेख को मैं पूर्वपक्ष के रूप चिन्तकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विवाह के मूल्य घट रहे हैं या बढ़ रहे हैं? यह सवाल एक ऐसे मोड़ पर ला खड़ा करता है जहाँ इस पर यदि हम विचार करें तो इसके मूल्य में बदलाव आना एक स्वाभाविक प्रक्रिया दिखता है। क्योंकि विवाह को जिन तथ्यों का आधार बनाकर इस समाज में लाया गया, उस पर प्रारंभ से ही कितना अमल हुआ यह भी एक सोचनीय प्रश्न है।

आज आधुनिक समाज में विवाह की परिभाषा में आमूल-चूल परिवर्तन हुए हैं। लोगों ने इसकी परिभाषा बदल दी है। समय के अनुसार यह कितना सही है, इस पर भी विचार करना आवश्यक है। क्योंकि आज के परिवेश में तलाक के बढ़ते मामले और विवाह से संबन्धित आपराधिक मामले की बढ़ोतरी ने इस पर भी सवाल खड़ा किया है कि आखिर कहाँ पर, कौन-सी गलतियाँ हुई हैं और होती रही हैं, जिसने आज विवाह के मायने बदल दिये।

प्रारम्भ से ही इसके नींव को तोड़ा-मरोड़ा गया, क्योंकि मानव समाज हमेशा से ही एक पुरुष प्रधान

समाज था। सारे नियम-कायदे भी विवाह के लिए उनके अनुसार ही बनाए गए। जिस नींव की स्थापना की गई, उसे कहाँ तक माना गया, इस पर यदि हम दृष्टान्त करते हैं तो इसके इतिहास को जानना पड़ेगा।

विवाह की आधारशिला

विवाह सामाजिक रूप से उन्नति का प्रतीक है। इसने मनुष्य के संस्कार, सद्भाव और अनुभूति को बदलकर रख दिया। विवाह संस्था के विकसित होने से पहले, स्त्री पुरुष का संबन्ध पशुओं की तरह ही सिर्फ बच्चा पैदा करना था। पशु-पक्षियों की तरह उनका साथ सिर्फ क्षणिक अवधि के लिए ही होता था। ऐसा माना जाता है कि जब समाज का उद्भव हुआ होगा, तब सामाजिक तनाव को खत्म करने के लिए और एक अनुशासन बनाए रखने के लिए विवाह को स्वीकार किया गया होगा तथा पुरुष और महिला के संबन्धों को औपचारिक बनाने के लिए कुछ मानदंड बनाए गए होंगे। कालान्तर में इसी ने विवाह का रूप लिया होगा। मनुष्य की स्वाभाविक प्रक्रिया जैसे कि भूख, प्यास और सेक्स जिनकी सन्तुष्टि के लिए समाज ने कुछ नियम बनाएं जिससे यह व्यवस्थित, अनुशासित और नियंत्रित रह पाए। यौन जीवन को नियंत्रित करने के लिए विवाह भी एक ऐसा ही नियम है।

धार्मिक कार्यों के संबन्ध में तैत्तिरीय आरण्यक में पत्नीरहित व्यक्ति को यज्ञ करने का अधिकारी नहीं माना गया है। शतपथ ब्राह्मण में पत्नी को आधा भाग कहा गया है। विवाह संस्कार वैदिक ऋषि-मुनियों की बहुत ही गहन सूझबूझ तथा चिंतन का परिणाम है।

विवाह का अर्थ

हिन्दू धर्म में विवाह को 16 संस्कारों में से एक संस्कार माना गया है। वि+वाह= विवाह। अर्थात् इसका शाब्दिक अर्थ है विशेष रूप से (उत्तरदायित्व) का वहन करना।

पाणिग्रहण संस्कार को सामान्य रूप से हिन्दू विवाह के नाम से जाना जाता है। अन्य धर्म में विवाह पति और पत्नी के बीच एक प्रकार का करार होता है, जिसे की विशेष परिस्थितियों में तोड़ा भी जा सकता है। परन्तु हिन्दू विवाह में पति और पत्नी के बीच जन्म-जन्मान्तर के संबन्ध को बताया गया। जिसे किसी भी परिस्थिति में नहीं तोड़ा जा सकता। अग्नि के साथ फेरे लेकर और ध्रुव तारे को साक्षी मानकर दो तन-मन तथा आत्मा एक पवित्र बन्धन में बँध जाते हैं।

हिन्दू विवाह के तीन मुख्य उद्देश्य हैं जैसे धर्म, सन्तान और यौन सुख। यहाँ व्यक्तिगत खुशी को सबसे कम महत्व दिया गया। इसे एक आध्यात्मिक मिलन का संस्कार माना गया। यह कहा गया है कि हिन्दू विवाह में पति और पत्नी के बीच शारीरिक संबन्ध से अधिक आत्मिक संबन्ध होता है और इस संबन्ध को अत्यन्त पवित्र माना गया है। हिन्दू मान्यताओं के अनुसार मानव जीवन को चार आश्रमों- ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, सन्यास आश्रम तथा वानप्रस्थ आश्रम में विभक्त किया गया है। गृहस्थ आश्रम के लिए पाणिग्रहण संस्कार आवश्यक है। हिन्दू विवाह में शारीरिक संबन्ध केवल वंश वृद्धि के उद्देश्य ही होता है। हिन्दू परिवारों में बच्चों को बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। ऋग्वेद के अनुसार उच्च नस्ल की सन्तान प्राप्त करने के लिए पति-पत्नी की हथेली को स्वीकार करता है। मनु के अनुसार विवाह का मुख्य उद्देश्य सन्तान उत्पत्ति है।

विवाह को सामाजिक अनुबन्ध नहीं, बल्कि एक सामाजिक संस्कार माना गया है। हिन्दू विवाह के अंतर्गत भौतिक सुख से ज्यादा आध्यात्मिक सुख पर प्रकाश डाला गया है।

विवाह की उत्पत्ति

हिन्दू पुराणों के अनुसार सबसे पहले धरती पर विवाह मनु और शतरूपा ने किया था। पुराणों के अनुसार- मनु और शतरूपा ही पहले दम्पती रहे होंगे, जिनसे मानव की उत्पत्ति हुई।

ईसाई विवाह की उत्पत्ति की व्याख्या एक कहानी के रूप में करते हैं। यहोवा परमेश्वर ने कहा "मनुष्य का अकेला रहना सही नहीं है। मैं उसके लिए एक ऐसा सहायक बनाऊँगा जो उसके योग्य हो।" इसके बाद पहले पुरुष आदम और पहले स्त्री इव का जन्म हुआ। और फिर पहला पुरुष आदम का विवाह पहली स्त्री इव के साथ हुआ था।

'द वीक' के अनुसार विवाह संस्था 4350 वर्ष से अधिक पुरानी है। पहला दर्ज विवाह 2350 ईसा पूर्व मेसोपोटामिया में हुआ था।

विवाह के प्रकार

गृहसूत्र, धर्मसूत्र और स्मृतियों में विवाह के आठ रूप बताए गए हैं-

ब्राह्म विवाह : दो परिवारों की सहमति से, समान वर्ग के सुयोग्य वर से, कन्या की इच्छानुसार विवाह निश्चित कर देना ब्राह्म विवाह कहलाता है। इस विवाह में वैदिक रीति और नियम का पालन किया जाता है। इसमें वर-वधू से किसी तरह की जबरदस्ती नहीं होती। कुल व गोत्र का विशेष ध्यान रखकर यह विवाह शुभ मुहूर्त में किया जाता है। इस विवाह को ही सबसे उत्तम माना गया है।

दैव विवाह : किसी सेवा, धार्मिक कार्य के उद्देश्य के हेतु या मूल्य के रूप में अपनी कन्या को किसी विशिष्ट वर के हाथों में सौंप देना देव विवाह कहलाता है। लेकिन इसमें कन्या की इच्छा की अनदेखी नहीं की जा सकती। कालान्तर में देव विवाह वैदिक यज्ञों के साथ ही लुप्त हो गए।

आर्ष विवाह : कन्या पक्ष वालों को कन्या का मूल्य देकर (सामान्यतः गोदान) करके कन्या से विवाह कर लेना आर्ष विवाह कहलाता है। यह विवाह ऋषि विवाह से संबन्ध रखता है।

प्राजापत्य विवाह : कन्या की सहमति के बिना माता-पिता द्वारा उसका विवाह अभिन्न जाति वर्ग, धनवान और प्रतिष्ठित वर से कर देना प्रजापत्य विवाह कहलाता है।

गान्धर्व विवाह : इस विवाह का वर्तमान स्वरूप है प्रेम विवाह। परिवार वालों की सहमति के बिना वर और कन्या का बिना किसी रीति रिवाज के आपस में विवाह कर लेना- गान्धर्व विवाह कहलाता है। इसका नया स्वरूप लिव इन रिलेशनशिप भी माना जाता है।

आसुर विवाह : कन्या को खरीद कर आर्थिक रूप से विवाह कर लेना आसुर विवाह कहलाता है। इसमें कन्या की मर्जी का ध्यान नहीं रखा जाता है।

राक्षस विवाह : कन्या की सहमति के बिना उसका अपहरण करके जबरदस्ती विवाह कर लेना- राक्षस विवाह कहलाता है।

पैशाच विवाह : कन्या की मदहोशी, गहन निद्रा, मानसिक दुर्बलता आदि का लाभ उठाकर शारीरिक संबन्ध बना लेना और फिर उससे विवाह कर लेना- पैशाच विवाह कहलाता है।

विवाह : अध्यात्म, आत्मीयता, संस्कार, उन्नति और सद्भाव का गठबन्धन

भारत में विवाह को एक पवित्र बन्धन माना गया है, जो दो व्यक्तियों को जीवन भर के लिए जोड़ता है। यह प्रेम परम्परा और पारिवारिक मूल्यों का एक गठबन्धन है। पश्चिमी देशों में विवाह एक अनुबन्ध या करार माना गया तथा व्यक्तिगत आनन्द को सबसे अधिक महत्व दिया गया। व्यक्तिगत आनन्द के लिए ही वे वैवाहिक संबम्ध बनाते हैं और यदि यह आनन्द नहीं मिलता है तो संबन्ध खत्म हो जाता है।

भारत में शादी सिर्फ दो लोगों के बीच नहीं, बल्कि दो परिवारों के बीच होती है। यह संस्कृतियों, परम्पराओं और मूल्यों का एक खूबसूरत जोड़ होता है।

भारतीय विवाह में कई दिनों तक अनुष्ठान चलते

हैं, जिसमें मालाओं का आदान-प्रदान, पवित्र अग्नि के सात फेरे, सात वचन और सिन्दूर समारोह शामिल रहते हैं। वास्तव में यह परम्पराओं, रीति-रिवाज, भावनाओं, प्रेम-स्नेह आदि का एक खूबसूरत तालमेल है, जो कि दो लोगों के बीच नहीं, दो परिवारों को एक दूसरे के करीब लाते हैं।

हिन्दू विवाह में शारीरिक संबन्ध केवल वंश वृद्धि के उद्देश्य से ही होता है। विवाह को सामाजिक अनुबंध नहीं, बल्कि एक सामाजिक संस्कार माना गया है। यहाँ भौतिक सुख से ज्यादा आध्यात्मिक सुख पर प्रकाश डाला गया है। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार विवाह सभी धर्म गतिविधियों का मूल है।

विवाह की नींव पर दरारें क्यों पड़ी.....?

यदि हम प्राचीन काल से ही विवाह की परम्परा का विश्लेषण करें तो हम यह पाते हैं कि इस पुरुष प्रधान समाज में विवाह के बनाए गए सारे नियम-कानून सिर्फ स्त्रियों के लिए ही तय कर दिए गए। पुरुषों के लिए कोई भी नियम कानून नहीं थे। हमारे शास्त्र, पुराण विवाह को आध्यात्मिक और संस्कारों से जोड़ते हैं, किन्तु हमारे समाज में पुरुषों ने प्रारंभ से ही इसे बहुत क्रूरतापूर्वक तोड़ा और मरोड़ा।

विवाह राजा-रजवाड़ों के लिए अपने राज्य का विस्तार या फिर पड़ोसी देशों से संबन्ध बनाने के हेतु होता था, जिसके कारण एक राजा की कई पत्नियाँ होती थी। समाज के विशिष्ट वर्ग या जमींदार पत्नी के होते हुए भी विवाह की बली चढ़ाकर कोठों पर जाना या फिर किसी अन्य स्त्री से संबन्ध बनाना अपना पुरुषार्थ समझते थे। स्त्रियों के लिए हजार नियम थे। विवाह को जन्म-जन्मांतर का संबन्ध बताकर स्त्रियों की स्वतंत्रता को छीन ली गई थी।

पूरी तरह से पुरुषों पर स्त्रियाँ निर्भर रह सके और कोई आवाज ना उठा सके इसके कारण उन्हें शिक्षा से भी दूर रखा गया।

सन 1955 तक तो हिन्दू विवाह में विच्छेद के लिए कोई प्रावधान नहीं था। क्योंकि हमारे समाज में विवाह जन्म-जन्मांतर का संबन्ध माना जाता था। किन्तु वास्तविकता यही थी कि सारे नियम-कानून केवल स्त्रियों के लिए ही थे। एक पत्नी के रहते भी पुरुषों को दूसरे विवाह की अनुमति थी। इसके विपरीत बाल-विवाह के उस दौर में कई बार पति की बाल्यावस्था में मृत्यु हो जाने पर, उसकी पत्नी पूरी उम्र एक ऐसे पति के नाम पर जीवन जीने को मजबूर होती थी जिसकी उसे स्मृति भी नहीं होती थी। ना हीं उसे पुनर्विवाह की अनुमति थी, ना ही उसे संपत्ति में कोई हिस्सा मिलता था।

हिन्दू धर्म में संबन्ध-विच्छेद की कोई अवधारणा नहीं थी, किन्तु इसमें परिवर्तन हुआ। परिवर्तन तभी होता है जब किसी वर्ग का बहुत लंबे समय तक लगातार शोषण होता रहे और यही कारण है कि हिन्दू समाज में भी विवाह विच्छेद के कानून बनाए गए। अर्थात् समय और परिस्थिति को देखते हुए इसे तोड़ा जा सकता है। हम आधुनिक समय की बात करते हैं कि विवाह की पवित्रता का स्तर नीचे गिर चुका है, किन्तु प्राचीनकाल से ही पुरुषों के लिए विवाह सिर्फ सामाजिक उन्नति और यौन सुख के लिए था।

यदि अतीत में देखें तो बहु-विवाह अत्यधिक प्रचलित थे। स्वतंत्रता के बाद के कार्यान्वयन विशेष विवाह अधिनियम 1954 और हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 के तहत बहु विवाह को प्रतिबन्धित किया गया।

वैदिक काल से हिन्दू विवाह की पारम्परिक अवधारणा, वर्तमान काल तक बदलाव के रंगों को दिखाया है। दहेज प्रथा के दूषित रूप ने स्त्रियों को भयावह रूप से प्रताड़ित कर समाज को दहलाया। परिवार का विघटन, घरेलू हिंसा, अकेलापन और अन्त में तलाक ने विवाह को एक अलग रूप से

परिभाषित किया है।

वैवाहिक परम्पराओं पर आधुनिकता की पैठ का विश्लेषण

विवाह में माता-पिता द्वारा उचित-अनुचित नियंत्रण, वर पक्ष के साथ अनुचित समझौता, दहेज का रोग, वैवाहिक अनुष्ठानों की आड़ में बेहिसाब खर्च, सामाजिक दिखावा, साथी का अनुचित चयन आदि के इस भयावह रूप ने - विवाह जैसी संस्था को भारतीय आधुनिक समाज ने एक करारा जवाब दिया है।

20वीं सदी के उत्तरार्ध में नारी की जागरूकता बढ़ी। नारी जागरण की आवाज बुलंद होने लगी। मध्यमवर्गीय परिवार की लड़कियाँ भी उच्च शिक्षा और संस्थानों की ओर रुख करने लगीं। लड़कियों को एक साधारण शिक्षा-दीक्षा देकर विवाह की जो घोषणा कर दी जाती थी, उसमें परिवर्तन आया। नौकरी के हर क्षेत्र में लड़कियों का प्रवेश हुआ और विवाह से पहले नौकरी उनका लक्ष्य बनने लगा।

नारी सशक्तीकरण ने भारतीय विवाह में पारम्परिक लिंग भूमिकाओं को चुनौती दी है। स्त्रियाँ अपने अधिकारों और वैवाहिक समानता की मांग कर रही हैं, जिससे भारतीय विवाहों के भीतर शक्ति की गतिशीलता को फिर से परिभाषित किया जा सके।

स्त्रियों की आत्मनिर्भरता, माता-पिता का विवाह के लिए लिए गए फैसलों का संतानों पर जबरदस्ती थोपना, पति-पत्नी द्वारा अपने अधिकारों का अनुचित रूप से एक दूसरे पर प्रयोग करना, मानसिक स्वतंत्रता, स्वच्छंदता आदि तथ्यों के कारण हीं शायद विवाह के कुछ विभिन्न रूप उभर कर सामने आए जैसे- अंतर्जातीय विवाह, प्रेम विवाह, लिव इन रिलेशनशिप आदि। वर्तमान में रस्मों को सरल बनाने, विवाह संस्कारों और रीति रिवाजों के सरलीकरण पर जोर दिया जाने लगा है।

आधुनिकता के धागे भी नहीं सील पाये विवाह संस्कारों को

असीमित सपने, आसमां को छूने की चाहत, लक्ष्य, कैरियर, नौकरी, सामाजिक प्रतियोगिता की लंबी दौड़, पश्चिमी देशों का प्रभाव, स्वतंत्रता, स्वच्छंदता और इन सब से ऊपर तकनीकी उन्नति - जिसने रिश्तो की महत्ता को निचले स्तर पर ला खड़ा किया है। आज रिश्तों, भावनाओं या आपसी संबन्धोंकी जगह फैशन, मोबाइल फोन, लैपटॉप, इंटरनेट आदि ने ले लिया है। किसी के पास किसी के लिए समय नहीं है। आपसी सूझबूझ गौण हो चुके हैं। इन तथ्यों के कारण विवाह के संबन्ध में लाए गए परिवर्तन भी सफल नहीं हो पाए। संबन्ध विच्छेद, तलाक, हत्या आपराधिक मामले इन सभी चीजों में बढ़ोतरी लगातार हो ही रही है।

विवाह प्रणाली की जड़ें कैसे मजबूत हों

पति-पत्नी को अपना दांपत्य जीवन सुखमय बनाने के लिए यह आवश्यक है कि एक दूसरे को समझने और परखने का वह सर्वप्रथम सामर्थ्य बनाएं और एक दूसरे के मनोभावों और इच्छाओं का आदर करते हुए जीवन को आगे बढ़ाएं। जीवन में हजारों समझौताएं होती हैं, किन्तु यह दोनों पक्षों से बराबर होनी चाहिए। प्रारंभ से ही हर क्षेत्र में समझौता स्त्रियाँ ही करती आई हैं और क्लेश यहीं से बढ़ता है।

दांपत्य जीवन की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि पति-पत्नी पारिवारिक जीवन से संबंधित कर्तव्य का निर्वाह पूर्ण निष्ठा से करें और इस बात की उन्हें पूर्ण समझ हो कि यह संबन्ध एक आध्यात्मिक संबन्ध भी है जो अग्नि एवं देवताओं के साक्ष्य में संपादित होता है।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आज के इस मशीनी युग और प्रतियोगिता के दौड़ में अभिभावक

के व्यवहार दोषपूर्ण हो चुके हैं। आज बच्चों से वे सिर्फ उनके कैरियर और लक्ष्य की ही बातें करते हैं और उन पर ही ध्यान केंद्रित करने की सलाह भी देते हैं। परंतु जब बच्चों के विवाह की उम्र हो जाती है और उनके विवाह करने के फैसले लेते समय कभी भी बच्चों से विवाह संस्कारों के जड़ों की बात नहीं की जाती है। न ही कभी उन्हें इसकी तह तक ले जाने का प्रयास किया जाता है, जिसके कारण बच्चे संस्कारों से दूर होते चले जा रहे हैं। उन्हें अपनी ही जड़ों के बारे में कुछ भी पता नहीं है।

आज मध्यम वर्गीय परिवार भी सोशल स्टेटस के लिए विवाह के भव्य तैयारी की आयोजन करता है। इस तैयारी में उसे महिनों लग जाते हैं। बच्चों से उनके महंगे पोशाकों और मेकअप की चर्चा की जाती है, किन्तु इसमें जो मूल है कि वह जिस जीवन में प्रवेश करने जा रहा है उ, सके विषय में कोई भी बातें नहीं की जाती है। यह अति आवश्यक है कि माता-पिता बच्चों को अपने जड़ों से जोड़ने का प्रयास करें। उनसे संस्कारों की बात करें। जीवन के उतार-चढ़ाव, उंच-नीच को समझाएं। पति-पत्नी के दांपत्य जीवन की सफलता के प्रत्येक पहलू से उन्हें अवगत करायें।

विवाह देश की समृद्धि और सांस्कृतिक विरासत का प्रमाण है, जो इसकी विविधता और जटिलता को दर्शाता है। वैवाहिक प्रणाली समाज के लिए एक दर्पण के रूप में कार्य करती है, जो उसके अतीत, वर्तमान और भविष्य के निर्धारण में सहायता करती है।

***

विवाह का काव्य-सन्दर्भ- पृ. 32 का शेषांश

'विष्णुपुराण' के चतुर्थांश के 24वें अध्याय में कलियुग की विभीषिका का वर्णन करने के क्रम में कहा गया है कि इस कलियुग में संसार अपने विनाश की जब बढ़ने लगेगा तब परस्पर प्रेम ही दाम्पत्य-जीवन का आधार होगा। और स्त्री केवल भोग का कारण बन जायेगी-

ततश्चानुदिनमल्पाल्पह्रासव्यवच्छेदाद्धर्मार्थयोर्जगतस्संक्षयो भविष्यति ॥73॥

अभिरुचिरेव दांपत्यसंबन्धहेतुः ॥76॥

स्त्रीत्वमेवोपभोगहेतुः ॥ 77। ।

इसका स्पष्ट अर्थ है कि यौन-संबन्ध ही एकमात्र सुख का साधन बन जाए तो समाज का अधःपतन होने लगता है। वस्तुतः विवाह के बाद गृहस्थ धर्म से हम जुड़ते हैं, संयम के साथ परिवार को एकजुट करते हुए आगे बढ़ते हैं और संन्यास तथा वानप्रस्थ के आश्रमों में रह कर मोक्ष व प्रकृति के मूल तत्त्व से जुड़ जाते हैं।

अतः भारतीय परम्परा में पति-पत्नी का सम्बन्ध केवल परस्पर प्रेम पर आश्रित नहीं होना चाहिए, बल्कि एक-दूसरे के प्रति कर्तव्यबोध तथा दैवी भावना के साथ होना चाहिए।

***

प्राचीनतम उपलब्ध विवाह-पद्धति में वर्णित विधि

म.म. रामदत्त ठाकुर (1300-1324 ई. के लगभग)

आज विवाह पद्धति की बात करें तो उपलब्ध प्राचीनतम पद्धति रामदत्त कृत विवाह-पद्धति उपलब्ध है। इसकी रचना 14वीं शती के आरम्भ में मिथिला में हुई थी। हरिसिंहदेव (1294-1324ई. तक) के मन्त्री वीरेश्वर तथा गणेश्वर थे। वीरेश्वर ने छन्दोग शाखा के लिए विवाह-पद्धति लिखी तथा गणेश्वर के पुत्र रामदत्त ने वाजसनेयि के लिए विवाहपद्धति लिखी। यह आज उपलब्ध है। मिथिला के पारम्परिक परिवारों में इसी का अक्षरशः पालन किया जाता है।

सिद्धान्त- मिथिला के विवाह में सबसे अधिक ध्यान दिया जाता है कि कन्या तथा वर के बीच किसी प्रकार का रक्तसम्बन्ध या सपिण्डता न हो। मातामह के पक्ष से पाँवीं पीढ़ी तथा पिता की ओर से छठी पीढ़ी तक के सभी सम्बन्धियों की गणना होती है। इसके लिए पंजीकार हैं, जो वंशावली का संरक्षण कर रखते हैं तथा वर तथा कन्या के 16 कुलों के व्यक्तियों का नाम लेकर यह निर्धारित करते हैं कि इनमें से किसी भी व्यक्ति का नाम सामान्य रूप से मिलान नहीं हो रहा है और वे तब स्वीकृति देते हैं कि इस कन्या का विवाह इस वर से हो सकता है। यह सिद्धान्त समारोह कहलाता है। इसके बाद एक और लोकाचार है जिसमें कन्या की माता अन्तिम स्वीकृति देती है कि मेरी पुत्री का विवाह इस वर से होगा।

कुमार कर्म- यह कन्या का होता है। विवाह से एक दिन पूर्व कन्या को उबटन लगाकर तालाब में स्नान कराया जाता है तथा आम और महुआ के वृक्ष जहाँ एक साथ हों ऐसे वृक्ष की पूजा करायी जाती है। वर मूँछ छोड़कर अपना मुण्डन कराते हैं तथा एक ही बार भोजन करते हैं। कन्यादाता भी मुण्डन कराकर एकभुक्त व्रत करते हैं।

धान का खील बनाना तथा सौंथनोताओन- विवाह से एक दिन पहले सन्ध्या में कन्या की कोई विवाहित बहन धान का लावा तैयार करती है तथा पिता या कन्यादाता मन्त्र पढ़कर कन्या के सींथ पर दूर्वा से चंदन का लेप लगाते हैं। वर के घर पर भी लावा तैयार किया जाता है।

विवाह के दिन कन्यादान करने वाले प्रातःकाल आभ्युदयिक तथा मातृका-पूजा करते हैं। 100 वर्ष पूर्व तक वर के पिता भी ऐसा करते थे। कन्या का एक भाई वर के घर पर पहुँचता है, जहाँ उसका भव्य स्वागत होता है तथा वर और बारात को अपने साथ लेकर आते हैं। आँगन में आते ही घर की सबसे सम्मानित महिला वर का नाक पकड़कर मण्डप के चारों ओर तीन बार घुमाती हैं। पुनः आठ व्यक्ति मिलकर ओखली में धान कूटते हैं और उसी धान की पोटली वर के वस्त्र में बाँध दी जाती है। कन्या, तुला अथवा मिथुन लग्न में जो उस वर-कन्या के लिए प्रशस्त हो, उस समय में मण्डप पर वर का स्वागत पद्धति के अनुसार होता है। इसके बाद वर कन्यादाता के पूजा स्थान से कन्या का हाथ पकड़कर मण्डप पर लाते हैं, जहाँ कन्यादाता दोनों पक्षों का गोत्र, प्रवर तथा तीन पीढ़ी तक के व्यक्ति का नाम उच्चारित करते हुए वर के हाथ में कन्या सौंप देते है। इस समय कन्याके हाथ में शंख, कुश तथा अक्षत होता है। इसके बाद एक सोने का सिक्का दक्षिणा में देकर दोनों को वेदी पर विवाह हेतु भेज देते हैं।

इस पद्धति में सबसे बड़ी बात समय की पाबंदी। कन्यादान का समय निश्चित होता है। आज से लगभग 60

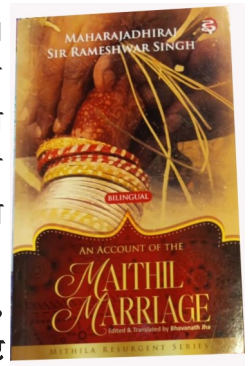

वर्ष पूर्व की एक घटना है कि वारात को आने में देर हो गयी, तबतक समय निकल गया। फलतः कनायदान करने वाले ने घोषणा कि आज अब विवाह नहीं होगा। दूसरा दिन निर्धारित होगा तब मैं अपनी पुत्री का विवाह कराऊँगा। कन्या के पिता द्वारा इस प्रकार की घोषणा इसी पद्धति में सम्भव है जहाँ वर पक्ष को लेने वाला तथा कन्यापक्ष को देने वाला मानकर कन्या के पिता का स्थान ऊँचा माना गया है। अतः सभी वर वाले कन्या के पिता का कृतज्ञ होते हैं।

वेदी पर ये वैदिक कर्म होते हैं- **राष्ट्रभृद्-होम, जया होम, अभ्यातान होम, लाजा-होम, अश्मारोहण, सप्तपदी, स्विष्टकृत् होम, त्र्यायुष् एवं सिन्दूरदान, कर्म-दक्षिणा, सकलारिष्ट प्रशमन, भूयसी, दूर्वाक्षत।**

लाजा होम में वधू हवन करती है। जो लोग सनातन धर्म में नारी को धार्क अधिकार से बंचित किए जाने की बात करते हैं उन्हें इस पद्धति को देखनी चाहिए। साथ ही, आज जो सात वचन पढ़ाये जाते हैं उनका उल्लेख इस पद्धति में नहीं है। ये परवर्ती प्रक्षेप है।

आगे आने वाली तीन रात्रियों तक वर तथा कन्या विना नमक का भोजन करते हैं तथा अलग अलग कमरे में जमीन पर सोते हैं।

चतुर्थी- चौठे दिन प्रातःकाल में वैदिक पद्धति के अनुसार चतुर्थी कर्म होता है। उसके बाद दोनों विधिवत् पति-पत्नी के रूप में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। इसके बाद दसौत आदि लोकाचार निभाए जाते हैं।

इस विषय पर दरभंगा के राजा तथा भारत धर्म महामण्डल के अध्यक्ष रमेश्वर सिंह का एक विशाल आलेख Journal of Bihar and Odissa Research Society, Part III of 1917 में प्रकाशित है। जिसके हिन्दी अनुवाद के पुनः सम्पादन 2023ई. में इसमाद प्रकाशन, दरभंगा से हुआ है।

विवाह का अंग चतुर्थी-कर्म

विवाह समारोह का अन्तिम भाग, जिसे चतुर्थी कहा जाता है, चौथे दिन होता है। पहले दिन के लाजा हवन के बाद से संरक्षित कलश-जल में प्रातःकाल वर-वधू स्नान करते हैं। इस दिन प्रातः वर द्वारा वधू को साथ लेकर पुनः हवन किया जाता है। चतुर्थी एक सबसे महत्त्वपूर्ण समारोह है; क्योंकि यह पुरुष और नारी को एक बनाता है और यह वैदिक संस्कारों के पूरा होने का प्रतिनिधित्व करता है।

इस अवसर पर निम्नलिखित मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है: "हे अग्नि! तू ही पापों का प्रायश्चित है, तू ही देवताओं का प्रायश्चित भी है। इस कारण से मैं, जो एक ब्राह्मण हूँ; प्रार्थना के साथ आपकी शरण में आया हूँ कि आप इस युवती के ऐसे अशुभ लक्षणों के प्रभाव को नष्ट कर दें, जो उसके पति की मृत्यु का कारण बन सकते हैं।

इसी प्रकार के मन्त्र वायु, आदित्य, सोम और गन्धर्व की सहायता से अशुभ संकेतों के संबन्ध में पढ़े जाते हैं, जो सन्तान की मृत्यु, और गृहस्थी को हानि पहुँचाते हैं, और पति के शुभ के लिए होते हैं।

"हे युवती! इस अभिषेक (पवित्र जल के सेचन) द्वारा मैं ऐसे आशंकित अशुभ संकेतों के प्रभाव को नष्ट कर देता हूँ जो आपके पति, पशु, सन्तान और घर की मृत्यु के कारक हो सकते हैं। तब तुम मेरे साथ वृद्धावस्था तक जीवित रहोगी। मैं अपनी आत्मा को तेरी आत्मा से जोड़ता हूँ। मैं अपनी हड्डियाँ, मांस और चर्म तेरे साथ एकीकृत करता हूँ।

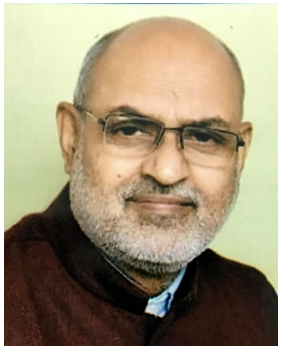

राम : एक मीमांसा

श्री अनिरुद्ध त्रिपाठी 'अशेष'

प्रकाशित कृतियाँ- 1. 'प्रेमायन' (भरत-चरित्र पर आधारित भोजपुरी महाकाव्य); 2. 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे' (भोजपुरी प्रबंध काव्य); 3. श्रीरामचरितमानस में क्रियायोग (हिन्दी); 4. क्रियायोग गीतावली (हिन्दी); 5. श्रीहनुमानचालीसा : एक दृष्टि (हिन्दी); प्रकाशनाधीन 1. 'मानस के आलोक में अष्टावक्र गीता भाग : एक (हिन्दी)

सम्प्रति :अर्बन एन्क्लेव, फ्लैट नं0- 5 A, सिल्वर सैंड, फेज-7 , गरुड़ बासा, हुरलुंग पंचायत (रॉक गार्डन के निकट), पो:- टेल्को वर्क्स, जमशेदपुर, झारखण्ड, 831004,

हम सनातनी समन्वयवादी रहे हैं। इस सिद्धान्त के आलोक में राम, कृष्ण, शिव, सूर्य, दुर्गा, नरसिंह आदि सभी देवों में एकत्व की भावना के साथ उनकी उपासना करते रहे हैं। जो देव के जिस नाम-रूप के साथ उपासना करता है वह उस देवत्व/ब्रह्म की उपासना करता है, यही हमारा सिद्धान्त रहा है और उस रूप में भी राम, आत्माराम की व्याख्या ब्रह्म के रूप में की गया है। उस दार्शनिक स्तर पर जब हम पहुँचते हैं तो सभी उपास्य देव तथा उनके उपासक भी एकरस हो जाते हैं। इस परब्रह्म रूप राम/आत्माराम के स्वरूप पर यहाँ विस्तृत आलेख प्रस्तुत है। लेखक ने उपनिषद्, अध्यात्मरामायण, रामचरितमानस तथा कबीर की पंक्तियों को लेकर इस आत्माराम की मीमांसा प्रस्तुत की है।

राम अद्भुत हैं, दिव्य हैं, इस अर्थ में कि वे एक साथ सब हैं- व्यक्त भी, अव्यक्त भी, सम भी, विषम भी, साकार भी, निराकार भी, सगुण भी, निर्गुण भी, देह भी, आत्मा भी, भगवान भी और संघर्षशील मनुष्य भी। उनकी कथा ईश्वर के अवतार की कथा तो है ही, मनुष्य के भगवान बनने की भी कथा है। वे जीवन की समस्त भूमिकाओं एवम् समस्त प्रकार की अनुकूल-प्रतिकूल स्थितियों-परिस्थितियों में सम रहते हुए, व्यक्तित्व और अस्तित्व, दोनों को एक साथ जीते हैं। वे जीवन के प्रति कहीं भी, कभी भी, किसी पलायन में नहीं हैं, किसी शिकायत में नहीं हैं, अपितु उसके समस्त रूप-रंगों के प्रति समान रूप से स्वीकृति के दिव्य अहोभाव में हैं, दिव्य प्रेम-भाव में हैं। वे करनेयोग्य सब कर्मों में भी हैं, फिर भी किसी कर्म में नहीं हैं। गहरे में, यही ईश्वरीय जीवन है, यही आध्यात्मिक जीवन है, यही एक मनुष्य का सच्चा धार्मिक होना है। प्रस्तुत आलेख में हम राम के इसी दिव्य जीवन-चरित्र को उनके ईश्वरीय स्वरूप के दर्पण में देखने-समझने की चेष्टा करेंगे।

भारतीय प्रज्ञा कहती है कि संसार का हर मनुष्य स्वभाव से राम है। क्योंकि, वह देह नहीं है, सर्वव्यापी आत्मा है। और आत्मा ही राम है, आत्मा ही ब्रह्म है, आत्मा ही भगवान है। हम जिस राम, कृष्ण, शिव आदि की, भगवान मानकर पूजा करते हैं, वे सब भी आत्माराम ही हैं। यथा-

शिव कहते हैं- "राम प्रकृति से परे परमात्मा, अनादि, आनन्दघन, अद्वितीय और पुरुषोत्तम हैं। जो अपनी माया से ही जगत को रचकर इसके बाहर-भीतर सब ओर आकाश के समान व्याप्त हैं तथा जो आत्मारूप से सबके अंतःकरण में स्थित हुए अपनी माया से इस विश्व को परिचालित कर रहे हैं।" यथा-

रामः परात्मा प्रकृतेरनादि-
रानन्द एकः पुरुषोत्तमो हि॥
स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा
नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः।
सर्वान्तरस्थोऽपि निगूढ आत्मा
स्वमायया सृष्टमिदं विचष्टे॥[1]

शंकराचार्य कहते हैं- "मोहरूपी सागर को पार करने और राग-द्वेषरूपी राक्षसों का संहार करने के पश्चात् शान्ति से एकरूप हुआ योगी अपने आत्माराम में ही विराजमान रहता है।" यथा-

तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा रागद्वेषादिराक्षसान्।
योगी शान्तसमायुक्त आत्मारामो विराजते॥[2]

श्रीसूतजी कहते हैं- "श्रीकृष्ण आत्माराम हैं। वे अपने आत्म-लाभ से ही सदा-सर्वदा पूर्णकाम हैं।" यथा -

आत्मारामं पूर्णकामं निजलाभेन नित्यदा॥[3]

श्रीशुकदेवजी कहते हैं- "कृष्ण को ही तुम सब आत्माओं का आत्मा समझो।" यथा-

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।[4]

शिव की वेशभूषा पर हँसनेवाले मूर्खों के प्रति ऋषि मैत्रेय कहते हैं- "यह नर-शरीर कुत्तों का भोजन है। जो अविवेकी पुरुष इसे आत्मा मानकर वस्त्राभूषण, माला और चंदनादि से इसी को सजाते-सँवारते हैं, वे अभागे ही आत्माराम भगवान शिव के आचरण पर हँसते हैं। यथा-

हसन्ति यस्याचरितं हि दुर्भगाः
स्वात्मन् रतस्याविदुषः समीहितम्।
यैर्वस्त्रमाल्याभरणानुलेपनैः
श्वभोजनं स्वात्मतयोपलालितम्॥[5]

लेकिन, मनुष्य का दुर्भाग्य है कि उसे अपने इस दिव्य आत्मस्वरूप का ज्ञान नहीं है। अतः वह नहीं जानता है कि जिस देह, मन, बुद्धि, अहंकार, इन्द्रियाँ, आदि को वह सत्य माने बैठा है, वस्तुतः वे सभी आत्माराम के कारण ही सत्य हैं, चेतन हैं, सजीव हैं, अन्यथा सभी जड़ हैं, सभी मृत हैं। आत्माराम ही वस्तुतः सभी का प्रकाशक है-

बिषय करन सुर जीव समेता।
सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई।
राम अनादि अवधपति सोई॥[6]

उपनिषद् के ऋषि कहते हैं कि वह आत्मा ही कान का कान है, मन का मन है, वाणी की वाणी है, प्राण का प्राण है और वही आँख का आँख है। इस सत्य को जानकर धीर पुरुष संसार से मुक्त होकर अमर हो जाते हैं-

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो
यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य।
प्राणश्चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥[7]

उस आत्माराम से ही यह समस्त संसार भी अस्तित्व में है। और, उसी की सत्यता से मोह के कारण जड़ माया भी सत्य-सी भासती है-

1 अध्यात्म रामायण : 1.1.17-18
2 शंकराचार्य, आत्मबोध : 50
3 श्रीमद्भागवत पुराण : 1.11.4
4 श्रीमद्भागवत पुराण : 10.14.55
5 श्रीमद्भागवत पुराण : 3.14.27
6 रामचरितमानस : 1.116.5-6
7 केनोपनिषद् : 1.2

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू।
मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
जासु सत्यता तें जड़ माया।
भास सत्य इव मोह सहाया॥[8]

कृष्ण कहते हैं- "हे अर्जुन! जिस प्रकार एक ही सूर्य सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करता है।" यथा-

यथा प्रकाशयत्येक: कृत्स्नं लोकमिमं रवि:।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत॥[9]

जड़-चेतन सहित अखिल विश्व-सृष्टि को प्रकाशित करनेवाला यह आत्मा अपना प्रकाश स्वयं है। तुलसी कहते हैं-

राम सच्चिदानंद दिनेसा।
नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥
सहज प्रकासरूप भगवाना।
नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना॥[10]

उपनिषद् के ऋषि कहते हैं कि यह (आत्मा) अपने ही प्रकाश से प्रकाशित है-

आत्मनैवायं ज्योतिषास्ते।[11]

आत्मा ही मनुष्य का वास्तविक स्वरूप है। आत्मा ही राम है, आत्मा ही ब्रह्म है। आत्मा और ब्रह्म भिन्न नहीं हैं, अभिन्न हैं, दोनों दो नहीं हैं, अ-दो हैं। तभी तो काकभुशुण्डि जी के सद्गुरु ने उनके और ब्रह्म की अभिन्नता को समझाते हुए कहा था- "वेद ऐसा गाते हैं कि वही तू है (तत्त्वमसि), अर्थात् तू वही ब्रह्म है। जल और जल की लहर की भाँति उसमें और तुझमें कोई भेद नहीं है।" यथा-

सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा।
बारि बीचि इव गावहिं बेदा॥[12]

महात्मा दादू भी ठीक यही बात कहते हैं। कहते हैं "परमात्मा सौं आतमा, ज्यों पाणी में लौंण।"

इसीलिए उपनिषद् के ऋषि कहते हैं कि जो यह कहता है कि वह (ब्रह्म) अन्य है, और मैं अन्य हूँ, वह उसे (ब्रह्म को) नहीं जानता है

अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद।[13]

लेकिन, विभेदकारी 'मैं' से उत्पन्न अज्ञानता के कारण मनुष्य को अपने इस सहज 'आत्मारामस्वरूप' की कोई खबर नहीं है। अज्ञानतावश उसने स्वयं के इस निर्विकार, आनन्दमय सहज 'आत्मस्वरूप' को बिसार दिया है। 'आत्मस्वरूप' की यह विस्मृति ही उसके समस्त प्रकार के दु:खों का एकमात्र कारण है। तभी तो तुलसी कहते हैं-

मायाबस स्वरूप बिसरायो।
तेहि भ्रमतें दारुन दुख पायो॥[14]

ऐसे तो 'दशरथ-पुत्र' के रूप में राम भी सामान्य मनुष्य ही हैं। उनका शरीर भी माता-पिता द्वारा प्रदत्त आम आदमी के शरीर जैसा ही आम शरीर है, फिर भी वह आम आदमी के शरीर की तरह विकारों से ग्रस्त नहीं है। क्योंकि, राम ने अपने शरीर को अपनी इच्छा के अनुकूल फिर से गढ़ा है, फिर से उसे एक नये शरीर के रूप में निर्मित किया है। इसलिए अब वह माया (मन), गुण (सत, तम, रज) और इन्द्रियों के अधीन नहीं है, अपितु 'निज इच्छा निर्मित' होने के कारण उनकी अपनी इच्छा के अधीन है-

निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥[15]

8 रामचरितमानस : 1.116.7-8
9 श्रीमद्भगवद्गीता : 13.33
10. श्रीमद्भगवद्गीता : 1.115.5-6
11 बृहदारण्यक-उपनिषद् : 4.3.6
12 रामचरितमानस : 7.110, घ.3-6
13 बृहदारण्यक उपनिषद् : 1.4.10
14 विनयपत्रिका : 116.1
15 रामचरितमानस : 1.192

भारतीय साहित्य में अक्षर को बीज मानकर प्रत्येक वर्ण का अर्थ निकालने की भी एक परम्परा रही है। इसमें व्याकरणोक्त धातु-प्रत्यय से परे बीजाक्षरों के अर्थ निकाले जाते हैं। इस पद्धति से 'माया' शब्द दो बीजवर्णों से मिलकर बना है- मा+या = माया। 'मा' का अर्थ है- नहीं, तथा 'या' का अर्थ है- जो। माया अर्थात् जो है नहीं, लेकिन लगता है कि है। गहरे में माया का अर्थ है- चित्तवृत्ति, यानी कि मन। यद्यपि मन मिथ्या है, भ्रममात्र है, मन का कोई अस्तित्व नहीं है, फिर भी वह है। सत, रज, तम, तीनों गुण भी इसी मिथ्या मन की सृष्टि हैं। मनुष्य का 'मैं' भी मन का ही उत्पाद है। 'मन' और 'मैं' दो नहीं हैं, अ-दो हैं। 'मन' ही 'मैं' है, और 'मैं' ही 'मन' है। फिर इसी 'मैं' से 'मेरा-तेरा' जैसे अन्य दूसरे विकारों का भी जन्म होता है। मन और उससे उत्पन्न 'मैं' तथा 'मेरा-तेरा' का विकार ही माया है। तभी तो तुलसी कहते हैं-

मैं अरु मोर तोर तैं माया।
जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥
गो गोचर जहँ लगि मन जाई।
सो सब माया जानेहु भाई॥[16]

आम आदमी का शरीर तो मन, उससे उत्पन्न 'मैं' तथा 'मेरा-तेरा' एवम् तीनों गुणों और इन्द्रियों का दास होने के कारण समस्त प्रकार के विकारों से ग्रस्त है। लेकिनस्वयं के 'चिदानन्दमय आत्मस्वरूप' को उपलब्ध होने के कारण राम का यह नूतन शरीर अब समस्त प्रकार के विकारों से मुक्त 'चिदानन्दमय' है। इसीलिए महर्षि वाल्मीकि राम के इस दिव्य शरीर की प्रशंसा करते हुए कहते हैं- "हे राम! तुम्हारी यह देह समस्त प्रकार के विकारों से मुक्त चिदानन्दमय है। इस रहस्य को केवल अधिकारी पुरुष ही जानते हैं।" यथा-

चिदानंदमय देह तुम्हारी।
बिगत बिकार जान अधिकारी॥[17]

यहा 'अधिकारी पुरुष' से अभिप्राय उस सत्पुरुष से है जिसकी साधना सिद्ध हो चुकी है, अर्थात् जो 'मैं' नामक विभेदकारी चित्तवृत्ति से पूर्णतः मुक्त होकर अपने 'चिदानन्दमय आत्मारामस्वरूप' से एकाकार हो गया है, तद्रूप हो गया है, उससे अभिन्न हो गया है। और इसीलिए अब उसका शरीर समस्त प्रकार के विकारों से मुक्त है। कबीर 'आत्मारामस्वरूप' को उपलब्ध इसी तरह के सिद्ध संत हैं। इसीलिए वे बड़ी ईमानदारी से अपना अनुभव सुनाते हुए कहते हैं- "अपने 'आत्मारामस्वरूप' से परिचय के बिना मेरा यह शरीर कभी 'काँच कथीरा' था, यानी विकारों से ग्रस्त 'तुच्छ शरीर' था, काँच जैसा ही मैला और क्षणभंगुर शरीर था, किन्तु 'आत्मारामस्वरूप' से परिचय होते ही अर्थात् 'मैं शरीर नहीं हूँ, आत्माराम हूँ' यह ज्ञान होते ही विकारों से ग्रस्त यही 'तुच्छ शरीर' अब 'कंचन' हो गया है, 'सोना' हो गया है, अर्थात् विकारों से मुक्त निर्विकार और अविनाशी हो गया है।" यथा-

बिन परचै तन काँच कथीरा।
परचैं कंचन भया कबीरा॥[18]

चित्तवृत्ति से उत्पन्न 'मैं' का स्वभाव विभेदकारी है। 'मैं' ही समस्त प्रकार के भेद-भावों का जनक है। इसी ने 'मनुष्य' और उसके 'आत्मारामस्वरूप' के मध्य भेद उत्पन्न कर दिया है, द्वैत पैदा कर दिया है। कबीर मानव-जीवन की इसी विसंगति को समझाते हुए कहते हैं कि कुम्भ में स्थित जल और नदी में स्थित जल में कोई भेद नहीं है, दोनों में एक ही जल है। लेकिन कुम्भ की दीवार के कारण जो जल बाहर नदी

16 रामचरितमानस : 3.14.2-3
17 रामचरितमानस : 2.126.3
18 कबीर ग्रंथावली : पद-17

में विराट दिखायी देता है, वही जल भीतर कुम्भ में अत्यन्त संकीर्ण दिखायी देता है। लेकिन, जब किसी तरह कुम्भ की यह दीवार फूट जाती है तो कुम्भ में संकीर्ण प्रतीत होनेवाला वही जल नदी में स्थित जल से मिलकर तत्क्षण विराट हो जाता है, असीम हो जाता है, इस सत्य को ज्ञानीजनों ने कहा है। यथा-

जल मैं कुंभ, कुंभ में जल है, बाहर भीतर पांनीं।
फूटा कुंभ जल जल ही समांनां यहु तत कथौ गियानीं॥[19]

यहाँ 'कुम्भ' मनुष्य के 'शरीर' का प्रतीक है तथा 'जल' सर्वव्यापी 'आत्माराम' का प्रतीक है और 'कुम्भ' की 'दीवार' मनुष्य के मिथ्या 'मैं' का प्रतीक है। इस 'मैं' की दीवार के कारण ही कुम्भ-स्थित जल ससीम बना हुआ है, स्वयं को क्षुद्र माने बैठा है, अन्यथा वह भी नदी-स्थित जल की तरह ही विराट है, असीम है। 'मैं' की दीवार के कारण ही कुम्भ में स्थित जल और नदी में स्थित जल के मध्य मिथ्या भेद बना हुआ है। 'मैं' की दीवार के गिरते ही दोनों का भेद समाप्त हो जाता है, दोनों अ-दो हो जाते हैं, अभिन्न हो जाते हैं। इसी अर्थ में कबीर कहते हैं कि जिसका 'मैं' विदा हो गया है, वह भक्त भगवान के समान है-

कहै कबीर जिनि गया अभिमाना।
सो भगता भगवंत समाना॥[20]

कहने का तात्पर्य है कि मनुष्य स्वभाव से मन, बुद्धि, अहंकार, देह और इन्द्रियादि अनित्य पदार्थ नहीं है, अविनाशी आत्माराम है, शाश्वत ब्रह्म है। किन्तु अहंजन्य अज्ञानता के कारण वह स्वयं को अविनाशी आत्माराम न मानकर, क्षणभंगुर देहादि मानने लगा है। तुलसी कहते हैं कि मनुष्य विभेदकारी चित्तवृत्ति 'मैं' के कारण अपने ही 'ब्रह्मस्वरूप' से अलग होकर अज्ञानता के अन्धकार में गिर पड़ा है। और, अज्ञानता के कारण ही वह अपने 'आत्मारामस्वरूप' को भूलकर स्वयं को देह मान बैठा है, देह को ही उसने अपना वास्तविक घर मान लिया है, यानी 'मैं देह हूँ', ऐसा समझ लिया है-

जिव जबतें हरितें बिलगान्यो।
तबतें देह गेह निज जान्यो॥[21]

कबीर कहते हैं- "अज्ञानता के कारण कभी मैं भी यही जानता था कि मैं 'वह' नहीं हूँ, कोई और हूँ, लेकिन उसे जान लेने के बाद अब तो मैं 'वही' हो गया हूँ, 'ब्रह्म' ही हो गया हूँ, अब तो उसके और मेरे मध्य स्थित 'मैं' और 'तुम' का मिथ्या द्वैत समाप्त हो गया है, दोनों के दो होने का मिथ्या भेद मिट गया है, अब तो बस कहने के लिए 'दो' रह गये हैं-

मैं जाना मैं और था मैं तो भया अब सोय।
मैं तैं दोऊ मिटि गईं रही कहन को दोय॥[22]

राम अपने सद्गुरु से प्राप्त दीक्षा और उपदेश द्वारा जीवन की इसी विसंगति से पूर्णतः मुक्त होकर अपने 'आत्मारामस्वरूप' में प्रतिष्ठित हैं। अब वे 'दशरथ-पुत्र राम' होते हुए भी 'भगवान राम' हैं। यही तो सद्गुरु द्वारा प्रदत्त 'दीक्षा' और 'उपदेश' की महिमा है, जिसे स्पष्ट करते हुए उपनिषद् के ऋषि कहते हैं कि अहंजन्य अज्ञानता के कारण जिस 'आत्मारामस्वरूप' से हमारा 'वियोग' हो गया है, उससे पुनः 'संयोग' स्थापित करा देना ही सद्गुरु की 'दीक्षा' है तथा अज्ञानता के कारण जिस अनित्य देह से हमारा 'संयोग' हो गया है, जिसे हमने भ्रमवश अपना वास्तविक होना मान लिया है, उससे 'वियोग' करा देना ही उनका 'उपदेश' है। यथा-

संयोगदीक्षा। वियोगोपदेश:।[23]

'दशरथ-पुत्र' के रूप में राम निस्संदेह आम आदमी हैं, फिर भी वे आम आदमी नहीं हैं। क्योंकि, वे

19 कबीर ग्रंथावली : पद-44
20 कबीर सबद : पद 137
21 विनय पत्रिका : 136.1
22 कबीर ग्रंथावली : अथ परचा को अंग-12
23 निर्वाण उपनिषद् : 14-15

आम आदमी की तरह अपने 'आत्मारामस्वरूप' के प्रति किसी अज्ञानता में नहीं हैं। वे जानते हैं कि वे शरीर, इन्द्रियाँ और मन, बुद्धि, अहंकार आदि के विकार नहीं हैं, अपितु वे निर्विकार, शान्त, शुद्ध-बुद्ध चैतन्य हैं, विशुद्ध बोधस्वरूप हैं अर्थात् साक्षात् ज्ञानस्वरूप और क्रोध-मद का नाश करनेवाले, करुणा के धाम हैं-

निर्मल शांत, सुविशुद्ध, बोधायतन,
क्रोध-मद-हरण, करुणा-निकेतं ॥[24]

वे जानते हैं कि वे आकाश के समान सर्वव्यापी, सर्ववन्दनीय, वामन, सर्वसमर्थ, ब्रह्मवेत्ता अर्थात् ब्रह्म को जाननेवाले, ब्रह्मरूप और चिन्ताओं को दूर करनेवाले हैं-

व्यापक व्योम, वंदारु, वामन, विभो,
ब्रह्मविद्, ब्रह्म, चिंतापहारी ॥[25]

तुलसी कहते हैं कि राम शरीरधारी ज्ञान हैं, सीता भक्ति हैं तथा लक्ष्मण वैराग्य हैं-

सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु सोहत धरें सरीर ॥[26]

एक बात और। जो मनुष्य यह जान जाता है कि वह देह, इन्द्रियाँ , मन, बुद्धि, अहंकार आदि का विकार नहीं है, अपितु आत्माराम है, ब्रह्म है, तो वह तत्क्षण आत्माराम ही हो जाता है, तत्क्षण ब्रह्म ही हो जाता है। इसी अर्थ में महर्षि वाल्मीकि राम से कहते हैं-

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ॥[27]

उपनिषद् के ऋषि कहते हैं- "जो कोई उस परब्रह्म को जान लेता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है।" यथा-

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति।[28]

इसी रहस्य का उद्घाटन करते हुए यम नचिकेता से कहते हैं- "हे गौतमवंशी नचिकेता! जैसे वर्षा का निर्मल जल अन्य निर्मल जलों से मिलकर वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार परमात्मा को जाननेवाले मुनिजन की आत्मा परमात्मा हो जाती है, तद्रूप हो जाती है।" यथा-

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ॥[29]

इसीलिए वैदिक ऋषि-मुनियों से लेकर आधुनिक साधु-संतों ने भी आत्माराम की पूजा को ही वास्तविक पूजा कहा है। कबीर तो आत्माराम की उपासना के कट्टर समर्थक हैं। इसीलिए वे आत्माराम के अतिरिक्त किसी अन्य को भगवान मानने से साफ इन्कार कर देते हैं। कहते हैं-

कवन बिचारि करत हौ पूजा,
आतम राम अवर नहीं दूजा ॥
बिन प्रतीतैं पाती तोड़ै,
ग्याँन बिनाँ देवलि सिर फोड़ै ॥
लुचरी लपसी आप संघारै,
द्वारै ठाढ़ा राम पुकारै ॥
पर आत्म जौ तत बिचारै,
कहि कबीर ताकै बलिहारै ॥[30]

स्वयं राम अपनी माता कौशल्या को 'आत्माराम' की पूजा के रहस्य का उपदेश देते हुए कहते हैं- "समस्त प्राणियों में आत्मारूप से मैं ही स्थित हूँ। हे माता! इसे न जानकर मूढ़ पुरुष केवल बाह्य भावना करता है ॥74॥ किन्तु, क्रिया से उत्पन्न हुए अनेक

24 विनय पत्रिका : 53.2
25 विनय पत्रिका : 56.3
26 रामचरितमानस : 2.321
27 रामचरितमानस : 2.126.3
28 मुण्डकोपनिषद् : 3.2.9
29 कठोपनिषद् : 8.1.25
30 कबीर सबद : पद 135

पदार्थों से भी मुझे संतोष नहीं होता। अन्य जीवों का तिरस्कार करनेवाले प्राणियों से प्रतिमा में पूजित होकर भी मैं वास्तव में पूजित नहीं होता॥75॥ जो अपने आत्मा और परमात्मा में भेद-बुद्धि करता है, उस भेददर्शी को मृत्यु अवश्य भय उत्पन्न करती है, इसमें संदेह नहीं॥77॥ यथा-

सर्वेषु प्राणिजातेषु ह्यहमात्मा व्यवस्थितः।
तमज्ञात्वा विमूढात्मा कुरुते केवलं बहिः॥74॥
क्रियोत्पन्नैर्नैकभेर्दैर्द्रव्यैर्मे नाम्ब तोषणम्।
भतावमानिनार्चायामर्चितोऽहं न पूजितः॥75॥
यस्तु भेदं प्रकुरुते स्वात्मनश्च परस्य च।
भिन्नदृष्टेर्भयं मृत्युस्तस्य कुर्यान्न संशयः॥77॥[31]

राम की तरह ही सांख्यदर्शन के प्रणेता महामुनि कपिल भी अपनी माता देवहूति को आत्माराम की पूजा का उपदेश देते हैं। कहते हैं- "मैं आत्मारूप से सदा सभी जीवों में स्थित हूँ। अतः जो लोग मुझ सर्वभूतस्थित परमात्मा का अनादर करके केवल प्रतिमा में ही मेरा पूजन करते हैं, उनकी वह पूजा स्वाँगमात्र है॥21॥ मैं सबका आत्मा, परमेश्वर सभी भूतों में स्थित हूँ। ऐसी दशा में जो मोहवश मेरी उपेक्षा करके केवल प्रतिमा-पूजन में ही लगा रहता है, वह तो मानो भस्म में ही हवन करता है॥22॥ जो व्यक्ति आत्मा और परमात्मा के बीच थोड़ा-सा भी अन्तर करता है, उस भेददर्शी को मैं मृत्युरूप से महान भय उपस्थित करता हूँ॥26। यथा-

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम्॥21॥
यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्।
हित्वार्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः॥22॥
आत्मनश्च परस्यापि यः करोत्यन्तरोदरम्।
तस्य भिन्नदृशो मृत्युर्विदधे भयमुल्बणम्॥26॥[32]

आत्माराम की भक्ति ही वास्तविक भक्ति है, क्योंकि इसमें भक्त और भगवान के मध्य कोई द्वैत नहीं है, कोई भिन्नता नहीं है, कोई विभाजन नहीं है। भक्त का अर्थ ही है- अविभक्त, अर्थात् जो विभक्त नहीं है, यानी जो स्वयं और भगवान के मध्य किसी विभाजन में नहीं है, किसी द्वैत-भाव में नहीं है। इसीलिए राम शबरी को सशरीर दर्शन तो देते हैं, दुर्लभ नवधा-भक्ति का उपदेश भी देते हैं, किन्तु तत्पश्चात् यह भी संकेत कर देते हैं कि, हे शबरी! तू अभी द्वैत से मुक्त नहीं है। अभी तू स्वयं को और मुझको, दो देख रही है, अर्थात् अभी तू स्वयं को मुझसे भिन्न देख रही है, मुझे स्वयं से अलग देख रही है। अज्ञानता के कारण ही तू अभी भी देह-भाव से मुक्त नहीं है। तभी तो मेरे प्रति की गयी तुम्हारी स्तुति भी द्वैत-भाव से मुक्त नहीं है। तेरी प्रार्थना बताती है कि तू अभी भी देह, मन, बुद्धि, स्त्री-पुरुष, जाति-कुजाति, ऊँच-नीच आदि अहंकारजन्य विकारों से ग्रस्त है, जबकि तू ये सब विकार नहीं है, तू शुद्ध-बुद्ध चैतन्य है। यहाँ शबरी की प्रार्थना देखने योग्य है। शबरी कहती हैं-

केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी।
अधम जाति मैं जड़मति भारी॥
अधम ते अधम अधम अति नारी।
तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी॥[33]

अगले वाक्य में राम स्पष्ट कर देते हैं कि हे शबरी! जिस राम को तू अपनी आँखों से देख रही है, वह तो देह है, वह तो रूप है, वह तो आकार है। वह नित्य नहीं है, अनित्य है, क्षणभंगुर है। इसलिए सत्य तो तू केवल आत्माराम को ही जान, क्योंकि वह नित्य है, शाश्वत है, अविनाशी है। उसकी न कोई जाति है, न वर्ण है, न नाम है, न उपाधि है, न वह स्त्री है, न पुरुष

31 अध्यात्म रामायण : उत्तरकाण्ड, 1.74-77
32 श्रीमद्भागवत पुराण : 3.29
33 रामचरितमानस : 3.34.2-3

है, न वह जड़मति है, अपितु वह शुद्ध-बुद्ध चैतन्य, निर्मल, निष्पाप और परम पवित्र है। तू वही है। तू और वह, दो नहीं हैं, अद्वय हैं। वह तेरे से भिन्न नहीं है, अभिन्न है। वही तेरा और समस्त जीवों का अपना सहज स्वरूप है। और, अपने इस सहज स्वरूप को प्राप्त होना ही मेरे दर्शन का परम अनुपम फल है। यथा-

मम दरसन फल परम अनूपा।
जीव पाव निज सहज सरूपा॥[34]

कथा कहती है कि शबरी पूजा-पाठ, व्रत-उपवास, जप-तप आदि बहुत कुछ करके भी जिस सत्य को नहीं पा सकी थीं, उसी सत्य को आज वह बिना कुछ किए, राम की कृपामात्र से पा लेती हैं, उनको श्रद्धापूर्वक सुननेमात्र से पा लेती हैं, ठीक वैसे ही जैसे जनक बिना कुछ किए, केवल अष्टावक्र की कृपामात्र से पा लेते हैं, उनको सुननेमात्र से पा लेते हैं। और पाकर बड़े विस्मित हैं, आश्चर्यचकित हैं। कहते हैं, अहो! आश्चर्य है! शरीरसहित जगत का परित्याग कर- **"सशरीरमहो विश्वं परित्यज्य।"** आश्चर्य यह कि मैंने कुछ किया नहीं, कुछ त्यागा नहीं, कुछ छोड़ा नहीं, देह भी है, जगत भी है, सब ज्यों-का-त्यों है, फिर भी अब न देह है, न जगत है, अर्थात् सब कुछ है, फिर भी कुछ नहीं है। अब तो मेरे द्वारा किस कुशलता से केवल परमात्मा को ही देखा जा रहा है, मैं तो कहीं हूँ ही नहीं, अब तो बस परमात्मा ही दिखायी दे रहा है। यथा-

सशरीरमहो विश्वं परित्यज्य मयाऽधुना।
कुतश्चित्कौशलादेव परमात्मा विलोक्यते॥[35]

गहरे में, यह 'ज्ञानयोग' है। इसमें और 'भक्तियोग' में कोई भेद नहीं है, दोनों ही मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं, दोनों ही संसार से उत्पन्न दु:खों को दूर करनेवाले हैं। तभी तो तुलसी कहते हैं-

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा॥[36]

यह 'योग' अत्यन्त दुर्लभ है। अर्जुन के प्रति कृष्ण ने इसकी दुर्लभता को बड़े विस्तार से उपस्थित किया है। लेकिन, अर्जुन और शबरी जैसे भक्तों को यह दुर्लभ 'योग' प्रभु की अहैतुकी कृपा से सहज ही प्राप्त है। 'योग' की प्रकृति आग की है, वह स्वभाव से आग जैसा दाहक है। इसीलिए तो उसे 'योगाग्नि' की संज्ञा दी गयी है। यह 'योग-अग्नि' है भी बहुत अद्भुत। बहुत अद्भुत इस अर्थ कि इसमें देह जलकर बिल्कुल राख हो जाती है, बिल्कुल भस्म हो जाती है, फिर भी वह बिल्कुल नहीं जलती, ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। क्या अर्थ है इसका? इसका अर्थ है कि देह रहती तो है, लेकिन ऐसे, जैसे वह देह नहीं, राख है, जैसे वह देह नहीं, भस्म है। और भस्म का होना क्या, भस्म का न होना क्या? भस्म से राग क्या, भस्म से विराग क्या? गहरे में, यह देह का भस्म होना नहीं है, अपितु 'मैं देह हूँ' इस अज्ञानता का भस्म होना है, यह देह के प्रति आसक्ति का भस्म होना है, यह देह के प्रति राग और मोह का भस्म होना है। यह भस्म ही शिव का शृंगार है, शिव की विभूति है। और जिस क्षण 'सत्' की आग में 'असत्' अर्थात भक्त का 'मैं' जलकर भस्म हो जाता है, उसी क्षण उसकी भक्ति 'योग' बन जाती है, उसी क्षण उसका 'सत्' से योग हो जाता है अर्थात् उसी क्षण वह अपने सहज स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। यही राम का यथार्थ दर्शन है। इसी की ओर संकेत करते हुए राम शबरी से कहते हैं-

मम दरसन फल परम अनूपा।
जीव पाव निज सहज सरूपा॥[37]

34 रामचरितमानस : 3.35.9
35 अष्टावक्र गीता : 23
36 रामचरितमानस : 7.114, ख.11

तुलसी इसी की ओर इशारा करते हुए कहते हैं कि शबरी अपनी देह को 'योग-अग्नि' में त्याग कर 'हरि पद' में लीन हो जाती हैं, अर्थात् अपने 'हरि-स्वरूप' यानी अपने 'राम-स्वरूप' से एक हो जाती हैं, तद्रूप हो जाती है, परमात्मा हो जाती हैं। कबीर के शब्दों में कहे तो बूंद सागर से मिलकर सागर हो जाती है जहाँ से फिर उसे संसार में लौटकर आना नहीं होता है। और, वह आ भी नहीं सकती है। क्योंकि, अब वह बची ही कहाँ है लौटकर आने को- **"बूंद समानी सिंधु में सो कत हेरी जाय।"** अब तो वह सागर ही हो गयी है, विराट ही हो गयी है, परमात्मा ही हो गयी है। यही है मोक्ष। यही है निर्वाण। यही है कैवल्य। यही है जन्म-मृत्यु के चक्र से सदा-सदा के लिए मुक्त हो जाना। 'योग-अग्नि' में अपनी क्षणभंगुर देह को त्यागकर शबरी इसी दुर्लभ अवस्था को प्राप्त हो जाती हैं। तुलसी कहते हैं-

तजि जोग पावक देह, हरि पद लीन भइ, जहँ नहिं फिरे॥[38]

एक बात यह भी। बूंद जबतक बूंद है, उसका नाश तय है, उसका विनाश सुनिश्चित है, उसकी मृत्यु अनिवार्य है। आखिर, नन्हीं-सी बूंद की औकात ही क्या है, मिट्टी में गिरी कि मिट गयी, आग में पड़ी कि जल गयी, हवा लगी कि सूख गयी। लेकिन, जैसे ही वह सागर से मिलकर सागर हुई, वैसे ही वह अविनाशी हो गयी। अब उसे न हवा सुखा सकती है, न जल गीला कर सकता है, न आग जला सकती है। जैसे ही शबरी ने 'योगाग्नि' में अपनी देह का त्याग किया- "तजि जोग पावक देह" वैसे ही वह नश्वर से मुक्त होकर अपने अनश्वर 'हरि-पद' में लीन हो गयीं- "हरि पद लीन भइ।" अर्थात् अपने अविनाशी स्वरूप में लय होकर अविनाशी हो गयीं। अविनाशी इस अर्थ में कि अब उन्हें पुनः संसार में नहीं आना है- "जहँ नहिं फिरे।" और, जिसका जन्म ही नहीं होना है, उसकी मृत्यु भी कहाँ होनी है, उसका नाश भी कहाँ होना है! लेकिन, अपने अविनाशी स्वरूप को उपलब्ध होकर भी शबरी उसकी कोई घोषणा नहीं करती हैं, मौन रह जाती हैं, मौन रह जाना उनकी अपनी मौज है, लेकिन, तुलसी करते हैं, उनका अपना आनन्द है, कबीर करते हैं, उनकी अपनी मस्ती है, जनक करते हैं, उनका अपना अहोभाव है।

तुलसी कहते हैं, अब तक तो मरता ही रहा हूँ, नाश ही होता रहा हूँ, लेकिन अब नहीं मरूँगा, अब नहीं नष्ट होऊँगा- "अबलौं नसानी, अब न नसैहौं।" क्योंकि राम की कृपा से अब 'भव-निशा' बीत चुकी है- "राम-कृपा भव-निसा सिरानी" अर्थात् राम की दया से अब अज्ञानता की रात विदा हो गयी है। जिस मोह की निशा में सब सोये रहते हैं- "मोह निसा सबु सोवनिहारा" वह मोह की रात अब समाप्त हो चुकी है। अब मैं जाग चुका हूँ तथा जागरण के प्रकाश में यह जान चुका हूँ कि अबतक जो नाश को प्राप्त होता रहा है, वह मैं नहीं हूँ, मैं तो अविनाशी चैतन्य हूँ, आत्माराम हूँ। अत: अब जाग जाने के बाद फिर से सोने वाला नहीं हूँ- **"जागे फिरि न डसैहौं।"**[39]

कबीर भी घोषणा करते हैं। कहते हैं, मैं नहीं मरूँगा, संसार मरेगा- "हम न मरैं, मरिहैं संसारा।" संसार नष्ट होगा, लेकिन संसार के नाश होने पर भी मेरा नाश नहीं है। क्योंकि जो सबका प्रकाशक है, जो सबको सजीव रखनेवाला है, मैं उसको प्राप्त हो गया हूँ-

"हम कूँ मिल्या जियावनहारा।"[40]

इसलिए अब मैं नहीं मरूँगा। मैंने मान लिया है कि मन मरता है, सो मर गया- "मरनै मन माँना।" और,

37 रामचरितमानस : 3.35.9
38 रामचरितमानस : 3.35.छंद
39 विनय पत्रिका : 105
40 कबीर सबद : पद-43

सच कहूँ तो मरते वे लोग हैं जिन्होंने अज्ञानता के कारण अपने 'आत्माराम' को नहीं जाना है- "ते नर मुए जिनि राम न जाँना।" कबीर बिल्कुल जनक की भाषा बोल रहे हैं। जनक भी तो यही कह रहे। कह रहे हैं, संसार के नाश होने पर भी मेरा नाश नहीं है-

"जगन्नाशेऽपि नास्ति मे।"[41]

यही 'आत्माराम' की उपासना की अद्भुत महिमा है। अपने 'आत्मारामस्वरूप' को उपलब्ध होकर व्यक्ति तत्क्षण 'आत्माराम' जैसा ही निर्मल, निर्विकार, अविनाशी और चिदानन्दमय हो जाता है। इसीलिए राम अपने प्रिय भक्तों को बिना किसी भेद-भाव के, उनके अनुकूल ढंग-शैली में,'आत्माराम' की उपासना का उपदेश देते दिखायी देते हैं। राक्षसकुल में उत्पन्न विभीषण भी राम के प्रिय भक्त हैं। शबरी की तरह राम उनको भी उनके 'आत्मारामस्वरूप' की याद दिलाते हैं और उसे उपलब्ध होने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इसीलिए हनुमान जैसे संत से अनुप्रेरित होकर विभीषण जब राम से मिलते हैं, तब राम उन्हें 'लंकेश' कहकर सम्बोधित करते हैं, यह जानते हुए भी कि लंका का ईश, यानी लंका का राजा तो रावण है, विभीषण नहीं। और, फिर वे परिवार सहित उनका कुशल-क्षेम पूछते हैं। यथा-

कहु लंकेस सहित परिवारा।
कुसल कुठाहर बास तुम्हारा॥[42]

भौतिक दृष्टि से देखा जाय तो निस्संदेह रावण ही लंकेश है, रावण ही लंका का वास्तविक सम्राट है। लेकिन, राम जिस लंका की बात कर रहे हैं, उसका सम्राट तो निस्संदेह विभीषण ही हैं, रावण नहीं। आइये, इस प्रसंग को संक्षेप में समझने की चेष्टा करते हैं। कथा कहती है कि सोने और मणियों से लंका को बनाने का कार्य मयदानव ने किया था-

सोइ मय दानवँ बहुरि सँवारा।
कनक रचित मनि भवन अपारा॥[43]

'मयदानव' और उसके द्वारा निर्मित 'लंका' का परिचय देते हुए तुलसी कहते हैं- "शरीररूपी ब्रह्माण्ड में सुन्दर प्रतीत होनेवाली 'प्रवृत्ति' ही लंका का दुर्ग है और, 'मनरूपी मयदानव' ने इसे बनाया है।" यथा-

बपुष ब्रह्माण्ड सुप्रवृत्ति लंका-दुर्ग,
रचित मन दनुज मय-रूपधारी।[44]

और, इस लंका में मोहरूपी रावण, अहंकाररूपी उसका भाई कुम्भकर्ण तथा शान्ति नष्ट करनेवाला कामरूपी मेघनाद है। यहाँ लोभरूपी अतिकाय, मत्सररूपी दुष्ट महोदर, क्रोधरूपी महापापी देवान्तक, द्वेषरूपी दुर्मुख, दम्भरूपी खर, कपटरूपी अकम्पन, दर्परूपी मनुजाद और मदरूपी शूलपाणि राक्षस हैं। यह (दुष्ट राजपरिवार और उसके सेनापति) राक्षसों का समूह अत्यन्त पराक्रमी और जीतने में बड़ा कठिन है। इन मोह आदि छः राक्षसों के साथ इन्द्रियाँ रूपी राक्षसियाँ भी हैं-

मोह दशमौलि, तद्भ्रात अहंकार,
पाकारिजित काम विश्रामहारी।
लोभ अतिकाय, मत्सर महोदर दुष्ट,
क्रोध पापिष्ठ-विबुधांतकारी॥4॥
द्वेष दुर्मुख, दंभ खर, अकंपन कपट,
दर्प मनुजाद मद-शूलपानी।
अमित बल परम दुर्जय निशाचर-
निकर, सहित षडवर्ग गो-यातुधानी॥5॥[45]

विभीषण का परिचय देते हुए तुलसी कहते हैं, हे

41 अष्टावक्र गीता- 31
42 रामचरितमानस : 5.45.4
43 रामचरितमानस : 1.177.6
44 विनय पत्रिका : 58.2
45 विनय पत्रिका : 58

नाथ! आपके चरणकमलों का सेवक 'जीव' ही अर्थात् 'आत्माराम' ही विभीषण है, जो इन दुष्टों, अर्थात् मन द्वारा निर्मित लंका में रहनेवाले मोह, अहंकार, काम, लोभ, मत्सर, क्रोध, द्वेष, दम्भ, कपट, दर्प आदि विकारों से भरे हुए वन में सर्वथा चिन्ताग्रस्त हुआ निवास कर रहा है-

जीव भवदंघ्रि-सेवक विभीषण।
बसत मध्य दुष्टाटवी ग्रसितचिंता।[46]

यहाँ राम द्वारा विभीषण को 'लंकेश' कहने का अभिप्राय है कि जिसे 'मनरूपी मयदानव' द्वारा निर्मित प्रवृत्तियों की लंका का सम्राट होना चाहिए था, वह अपने वास्तविक 'आत्मारामस्वरूप' को भूलकर मोहरूपी रावण का भाई बनकर मानसिक प्रवृत्तियों के कारागार में कैद, दास की जिंदगी जीने को विवश है। मन के इस कारागार में विभीषण के निवास को ही राम 'कुठाहर बास' अर्थात् 'न रहनेयोग्य स्थान' कहते हैं। यह कथा हर मनुष्य की कथा है। इसके बाद राम तत्क्षण विभीषण का राजतिलक करते हैं और इस प्रकार वे उन्हें मोहरूपी रावण द्वारा शासित मन-निर्मित प्रवृत्तियों की लंका से मुक्त होकर अपने 'आत्माराम-स्वरूप' को उपलब्ध होने की प्रेरणा देते हैं-

अस कहि राम तिलक तेहि सारा।
सुमन बृष्टि नभ भई अपारा॥[47]

कथा कहती है कि हनुमान जैसे संत (सद्गुरु) की कृपा से विभीषण को राम का दर्शन होता है अर्थात् अपने 'आत्मारामस्वरूप' का प्रत्यक्षबोध होता है और वे अपने भीतर की उस बादशाहत प्राप्त हो जाते हैं, जो काल एवं मृत्यु के प्रभाव से परे अचल है, यानी अखण्ड, शाश्वत और नित्य है- "अबिचल राजु बिभीषन पायो।"[48] यही सच्चे अर्थों में वास्तविक साम्राज्य और वास्तविक सम्राट को उपलब्ध होना है। 'हनुमानचालीसा' में इसी की ओर इशारा करते हुए तुलसी कहते हैं-

तुम्हरो मंत्र बिभीषन माना।
लंकेस्वर भए सब जग जाना॥17॥

और, इसी की ओर संकेत करते हुए रामने शबरी से कहा था-

मम दरसन फल परम अनूपा।
जीव पाव निज सहज सरूपा॥[49]

इसी आन्तरिक साम्राज्य और सम्राट को उपलब्ध होने के लिए बुद्ध ने भौतिक साम्राज्य तथा राजसिंहासन का परित्याग कर दिया था। अपने सच्चिदानन्दमय स्वरूप को उपलब्ध होना ही दुःखों से पूर्ण मुक्ति और शाश्वत सुख-शान्ति की प्राप्ति का एकमात्र उपाय है। तुलसी कहते हैं-

"जिसका देह से परे, अपने स्वरूप से अनुराग हो जाता है अर्थात् जो अपने 'आत्माराम' की भक्ति-पूजा करता है, वह तो संसार में कुछ विलक्षण ही दिखने लगता है। और, वह विलक्षणता यह है कि उसके लिए संतोष, समता, शान्ति और असम्भव-सा प्रतीत होनेवाला मन-इन्द्रियों का निग्रह स्वाभाविक हो जाते हैं। वह अपने को देहवाला नहीं मानता है, अर्थात् 'मैं देह हूँ' इस मिथ्या भ्रम से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार वह अपने विशुद्ध, निरामय और एकरस, अर्थात अव्यय, नित्य, शाश्वत एवं अविनाशी स्वरूप में स्थित हो जाता है। फिर उसे हर्ष-विषाद नहीं व्यापता है। और, जिसकी ऐसी 'नित्य-स्थिति' हो जाती है, वह तीनों लोकों को पवित्र करनेवाला हो जाता है, अर्थात् जो ऐसी 'शाश्वत महादशा' को उपलब्ध हो जाता है, वह तीनों लोकों को पावन करनेवाला परमात्मा हो जाता है।" यथा-

46 विनय पत्रिका : 58.6
47 रामचरितमानस : 5.48.10
48 रामचरितमानस : 6.106.8
49 रामचरितमानस : 3.35.9

अनुराग सो निज रूप जो जगतें बिलच्छन देखिये।
संतोष, सम, सीतल, सदा दम, देहवंत न लेखिये॥
निरमल, निरामय, एकरस, तेहि हरष-सोक न ब्यापई।
त्रैलोक-पावन सो सदा जाकी दसा ऐसी भई॥[50]

'दशरथ-पुत्र' के रूप में मनुष्य से 'ब्रह्म' हुए राम 'ब्रह्म' की तरह ही संसार में तो हैं, लेकिन संसार उनमें नहीं है। ब्रह्म के स्वभाव और संसार में उसकी स्थिति का परिचय देते हुए तुलसी कहते हैं कि वह चराचरमय है, यानी जड़-चेतन सबमें व्याप्त है, लेकिन वह सबसे रहित भी है, सबसे मुक्त भी है, क्योंकि उसमें संसार के प्रति कोई राग नहीं है, अपितु उसके प्रति वह स्वभाव से ही विरक्त है, विरागी है-

अग जगमय सब रहित बिरागी।[51]

राम भी संसार के प्रति सर्वत्र रागमुक्त हैं, अनासक्त हैं अतः प्रतिकूल स्थितियों में भी वे सहज प्रसन्न बने रहते हैं। वनवास की खबर सुनकर अयोध्या में सर्वत्र व्याकुलता और विषाद छा जाता है-

नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी।
छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥
सुनि भए बिकल सकल नर नारी।
बेलि बिटप जिमि देखि दवारी॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई।
बड़ बिषादु नहिं धीरजु होई॥[52]

अयोध्यावासियों में कैकेयी के प्रति आक्रोश भी कम नहीं हैं-

मिलेहि माझ बिधि बात बेगारी।
जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी॥[53]

लेकिन, राम सदा की भाँति अपने सहजानन्द में हैं। क्योंकि, उनके भीतर राज्याभिषेक के प्रति कोई राग नहीं है। और, इसीलिए उसके खो जाने पर भी वे रोष में नहीं हैं, क्रोध में नहीं हैं, अपितु सहज प्रसन्न हैं-

मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू।[54]

सामान्यतः रागी व्यक्ति वांछित वस्तु को पाने के बाद सहज नहीं रह पाता है, प्रसन्नता से भर उठता है। और, इसीलिए उसके खो जाने पर रोष और क्रोध से भी भर उठता है, इन विकारों से बच नहीं पाता है। किन्तु, राग से मुक्त होने के कारण राम को न तो राज्याभिषेक की बात सुनकर प्रसन्नता होती है, न ही वनवास की बात सुनकर कोई दुःख होता है-

प्रसन्नतां यो न गतोऽभिषेकत-
स्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।[55]

असल में, राम सर्वत्र अपने साक्षी-स्वभाव में स्थित हैं। साक्षित्व मनुष्य का सहज स्वभाव है, उसका सहज स्वरूप है। इसी की ओर इशारा करते हुए अष्टावक्र जनक से कहते हैं- "आत्मा साक्षी विभुः पूर्ण एको।"[56] उपनिषद् के ऋषि भी यही कहते हैं। कहते हैं - "साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।"[57] तुलसी कहते हैं कि राम 'सृष्टि-स्रष्टा' और 'सकल दृश्य-द्रष्टा',[58] दोनों हैं। साक्षित्व का अर्थ है- कर्ताभाव से मुक्त द्रष्टाभाव में होना अर्थात् तटस्थता एवं समझदारीपूर्वक अपने 'मैं' के प्रति सदैव जागरण में होना। समझदारीपूर्वक इसलिए, क्योंकि समझदारी खो गयी तो जागरण भी खो जाता है और तब तटस्थता भी नहीं रह पाती है, तब हम कर्म अथवा दृश्य के साथ एक होकर उनका कर्ता और भोक्ता बन जाते हैं, फिर तो हम निर्विकार नहीं रह पाते

50 विनय पत्रिका : 136.11
51 रामचरितमानस : 1.184.7
52 रामचरितमानस : 2.45.6-8
53 रामचरितमानस : 2.46.1
54 रामचरितमानस : 1.165.1
55 रामचरितमानस : 1. श्लोक-2
56 अष्टावक्र गीता : 12
57 श्वेताश्वतर-उपनिषद् : 6.11
58 विनय पत्रिका : 53.7

हैं, मौलिक नहीं रह पाते हैं, क्योंकि कर्ता और भोक्ता होकर निष्प्रभावित नहीं रहा जा सकता है और निष्प्रभावित रहे बिना निर्विकार और मौलिक रह पाने का कोई उपाय नहीं है। साक्षित्व दर्पण की तरह है। दर्पण पर अनेक आकृतियाँ प्रतिबिम्बित होती हैं, किन्तु दर्पण उन्हें पकड़ता नहीं है। अतः उस पर प्रतिबिम्बित होने वाली सभी आकृतियाँ अन्ततः उस पर से फिसलकर खो जाती हैं तथा दर्पण ज्यों-का-त्यों रह जाता है, कोरा-का-कोरा रह जाता है। साक्षी दर्पण की तरह जीता है। वह संसार में रहते हुए भी संसार से परे रहता है, संसार उसे छू नहीं पाता है।

राम अयोध्या में हों या वन में, संयोग में हों या वियोग में, शान्ति में हों या युद्ध में, उनके चारों ओर का फैला हुआ परिवेश चाहे जैसा हो, वे वहाँ कैसा भी दिखें, चाहे कुछ भी करें, किन्तु भीतर रिक्त बने रहते हैं, शून्य बने रहते हैं, क्योंकि वे सर्वत्र साक्षित्व में होते हैं, बिल्कुल दर्पण की तरह निर्मल और निर्विकार , न भोक्ता, न कर्ता, मात्र द्रष्टा। कतिपय दृष्टान्त द्रष्टव्य हैं।

मुनि सुतीक्ष्ण भगवान राम के प्रेम में निमग्न हैं, ध्यानस्थ हैं, किन्तु राम इस दिव्य अहोभाव के भी द्रष्टामात्र हैं, इस दिव्य दृश्य के भी भोक्ता नहीं हैं।

तुलसीदासजी कहते हैं [59]-

मुनि अगस्त कर सिष्य सुजाना।
नाम सुतीछन रति भगवाना॥

× × ×

निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी।
कहि न जाइ सो दसा भवानी॥

× × ×

अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई।
प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई॥

यहाँ राम का 'तरु ओट से देखना' साक्षित्व का प्रतीक है। सुग्रीव राम के मित्र हैं और बालि उनके मित्र का शत्रु। सुग्रीव पुण्य का प्रतीक हैं और बाली पाप का। दोनों के मध्य भीषण युद्ध चल रहा है। किन्तु राम यहाँ भी अपने साक्षित्व में खड़े हैं, इस दृश्य को भी वे वृक्ष की आड़ से सिर्फ देखते हैं। यहाँ वृक्ष 'कर्म' का प्रतीक है- "गहनं तरुकर्मसंकुल।"[60]साक्षी का 'कर्म' तो दिखायी देता है, साक्षी नहीं, साक्षी तो 'कर्म' की आड़ में छिपा होता है-

पुनि नाना बिधि भई लराई।
बिटप ओट देखहिं रघुराई॥[61]

साक्षी के लिए युद्ध क्या, शान्ति क्या? पाप क्या, पुण्य क्या? शत्रु क्या, मित्र क्या? राम किसी से भी बँधे हुए नहीं हैं, सब के प्रति निर्बन्ध हैं, सब के प्रति अनासक्त हैं, सब के प्रति द्रष्टाभाव में हैं। कृत्य हो रहा है, युद्ध हो रहा है, क्योंकि कारण सब मौजूद हैं, लेकिन राम वहाँ खड़ा होकर भी भीतर में तटस्थ हैं, दूर कहीं किनारे पर खड़े हैं अपनी निष्पक्षता में, दोनों के प्रति अचुनाव में, दोनों के प्रति समत्व में, 'एक रूप' के भाव में। सुग्रीव द्वारा पूछे जाने पर कि मित्र होने के नाते,वह उनका पक्ष क्यों नहीं लेते? राम बड़े साफ शब्दों में कहते हैं-

एक रूप तुम्ह भ्राता दोऊ।
तेहि भ्रम ते नहिं मारेउँ सोऊ॥[62]

यही साक्षित्व का गुण-धर्म है। यह सर्वत्र चुनाव और निष्पक्षता में होना है, समभाव में होना है, अभेद में होना है। साक्षी में किसी के प्रति न राग है, न रोष है। वह न तो पाप से बँधा है, न पुण्य से, न गुण से, न दोष से। वह सब के प्रति सम है-

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू।
गहहिं न पाप पूनु गुन दोषू॥[63]

59 रामचरितमानस : 3.9.1,10,13.
60 विनय पत्रिका : 59
61 रामचरितमानस : 4.7.8
62 रामचरितमानस : 4.7.5

फिर भी, वह सम और विषम व्यवहार करता हुआ भी दिखायी देता है, अन्यथा उसका समत्व भी एक चुनाव हो जाएगा-

तदपि करहिं सम बिषम बिहारा।[64]

राम, जो कुछ क्षण पूर्व सुग्रीव और बालि के युद्ध के द्रष्टा हैं, कुछ क्षण बाद ही सुग्रीव की ओर से युद्ध करते हुए भी दिखाई देते हैं, तदपि भीतर उनकी निष्पक्षता बनी रहती है, भीतर उनका साक्षित्व कहीं खण्डित नहीं होता है। जीवन के रंगमंच पर मित्र की भूमिका के निर्वहन का निमित्त मात्र हैं वे, एक अभिनेता मात्र हैं वे, 'मित्र-धर्म' का कर्ता नहीं। वे मित्र की सहायता हेतु युद्ध में उतर जाते हैं, फिर भी भीतर एक तत्व शेष रहता है, जो युद्ध में नहीं उतरता, राम उसके प्रति जगे हुए होते हैं। बालि का वध करते हुए भी उनके अन्दर 'मैं इसे मार रहा हूँ' ऐसा कोई भाव निर्मित नहीं होता, कर्ता होने का कोई भाव नहीं पकड़ता। तभी तो वे उसी बालि को क्षण-भर बाद अमरता का वर देते हुए भी दिखायी देते हैं। कहते हैं-

अचल करौं तनु राखहु प्राना।[65]

इसीलिए तो कृष्ण कहते हैं- "हे अर्जुन! जिस पुरुष के अन्तःकरण में 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा भाव नहीं है तथा जिसकी बुद्धि लिपायमान नहीं है, वह पुरुष इन सब लोगों को मारकर भी वास्तव में न तो मारता है और ना पाप से बँधता है।" यथा-

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥[66]

सीता को प्राप्त करने के उद्देश्य से धनुष-यज्ञ में उपस्थित सभी राजाओं में फलाकांक्षा, आसक्ति और अहंकार साफ-साफ दिखायी देता है, किन्तु राम में न फलाकांक्षा है, न आसक्ति है, न अहंकार है। क्योंकि, राम इस प्रतियोगिता में भी प्रतियोगी की तरह नहीं हैं, साक्षी की तरह हैं। वे अपने कर्म के कर्ता नहीं हैं, द्रष्टा हैं। इसीलिए उनमें धनुष तोड़ने की इच्छा और उत्सुकता भी नहीं है। वे तो अपने गुरु महर्षि विश्वामित्र के आदेश-पालन हेतु खड़े होते हैं। इसीलिए उनके अन्दर आम राजाओं की तरह धनुष-भंग को लेकर भी किसी प्रकार का विकार नहीं है, वे सहज स्वभाव से उठ खड़े होते हैं-

ठाढे भए उठि सहज सुभाए।[67]

और, जब गुरुदेव को प्रणाम कर धनुष की ओर चलते हैं, तब भी उनकी सहजता भंग नहीं होती है-

सहजहिं चले सकल जग स्वामी।[68]

और, इसीलिए उनमें न हर्ष है, न विषाद है-

हरषु बिषादु न कछु उर आवा।[69]

और, धनुष टूट गया तो सीता द्वारा जयमाल पहिराये जाने पर भी उनका हृदय विकारों से शून्य रहता है एवं जब उनकी गर्दन पर परशुराम का फरसा चलने को प्रस्तुत है, जिसे देखकर सीतासहित उपस्थित जनसमूह भयाक्रान्त हो उठता है, तब भी वे भीतर निष्कम्प और हर्ष-विषाद से मुक्त बने रहते हैं-

सभय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीरु।
हृदयँ न हरषु बिषादु कछु बोले श्रीरघुबीरु॥[70]

कहने का अभिप्राय है कि जीवन है तो कर्म भी साथ होगा ही। कर्म से भागने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि, भागा तो भागना ही कर्म बन जायेगा। अतः समझदारी कर्म छोड़ने में नहीं है, 'कर्ताभाव' को छोड़ने

63 रामचरितमानस : 2.218.3
64 रामचरितमानस : 2.218.5
65 रामचरितमानस : 4.1.10
66 श्रीमद्भगवद्गीता : 18.17
67 रामचरितमानस : 1.253.8
68 रामचरितमानस : 1.254.5
69 रामचरितमानस : 1.253.7
70 रामचरितमानस : 1.270

में है, समझदारी अकर्मण्य बनने में नहीं है, कर्म के प्रति 'अहंभाव' से मुक्त रहने में है, समझदारी साक्षी बनने में है। कर्म तो हमें भी ठीक वैसा ही करना है, जैसा एक आसक्त व्यक्ति करता है। जिस प्रकार एक अज्ञानी और मोहग्रस्त मूढ़ व्यक्ति आसक्त होकर कर्म करता हुआ दिखायी देता है, वैसा ही हमें भी कर्म में लिप्त हुआ दिखायी देना है, वैसा ही हमें भी कर्म में पूर्णतः उतर जाना है। फर्क कर्म में उतर जाने में नहीं करना है, फर्क कर्ता में करना है, फर्क आसक्ति में करना है। यह फर्क बाहर नहीं होगा, भीतर होगा। तब कर्म तो होगा, किन्तु भीतर कहीं कोई कर्ता नहीं होगा। फिर तो सारा जीवन सिर्फ एक अभिनय होगा और हम सिर्फ एक अभिनेता होंगे। अभिनेता कर्म तो पूरा करता है, किन्तु आसक्ति तनिक भी नहीं रखता है।

राम के समस्त कर्म एक अभिनेता के कर्म हैं। कथा कहती है कि रावण के हाथों राम की पत्नी सीता का हरण हो जाता है। राम जंगल में रोते-चिल्लाते हैं। सीता का नाम ले-लेकर चीखते-पुकारते हैं। 'महा बिरही' और 'अति कामी' पुरुष की भाँति विक्षिप्त-सा तड़प-तड़पकर वृक्षों, लताओं, पक्षियों, मृगों तथा भ्रमरों आदि से सीता के विषय में पूछते हैं। यथा-

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी।
तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥

× × ×

एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी।
मनहुँ महा बिरही अति कामी॥[71]

तो क्या, राम सचमुच किसी 'महा बिरही' और 'अति कामी' पुरुष की भाँति रोते हुए सीता की खोज कर रहे हैं? तुलसी कहते हैं कि राम तो पूर्णकाम हैं, आनन्द की राशि हैं, अजन्मा और अविनाशी हैं। वे तो यहाँ मनुष्यों के-से चरित्र कर रहे हैं, यानी लीला कर रहे हैं, अभिनय कर रहे हैं-

पूरनकाम राम सुखरासी।
मनुजचरित कर अज अबिनासी॥[72]

यहाँ राम एक 'विरही मनुष्य' की भूमिका यानी एक 'कामी मनुष्य' की 'विरह-दशा' की भूमिका का निर्वाह पूरी निष्ठा से करते हुए दिखायी दे रहे हैं, जैसा एक आसक्त व्यक्ति करता है, बल्कि यूँ कहें कि उससे कुछ अधिक ही रोते-चिल्लाते दिखायी दे रहे हैं। उनके और आसक्त व्यक्ति के कर्म में कहीं कोई अन्तर नहीं दिखायी देता है। तभी तो तुलसी कहते हैं-

बिरह बिकल नर इव रघुराई।
खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई॥[73]

अन्तर दिखायी नहीं देता है, लेकिन अन्तर है। अन्तर कर्म में नहीं है, आसक्ति में है। अन्तर बाहर नहीं है, भीतर है, अन्तर उनके 'कर्मभाव' में नहीं है, 'कर्ताभाव' में है, अन्तर 'अहंभाव' में है। बाहर से 'महाबिरही-सा' दिखायी देनेवाले राम भीतर से 'संयोग' और 'वियोग' दोनों से परे हैं, किन्तु विरह के दुःख का अभिनय बड़ा स्वाभाविक कर रहे हैं, देखने में वे बिल्कुल 'विरही' और 'कामी' व्यक्ति की तरह ही लग रहे हैं-

कबहूँ जोग बियोग न जाकें।
देखा प्रगट बिरह दुखु ताकें॥[74]

यहाँ राम का कर्म एक अभिनेता का कर्म है। वे विरही नहीं हैं, विरही की भूमिका के अभिनेता हैं और अपनी भूमिका का निर्वाह पूरी निष्ठा से करते हैं, किन्तु अपनी भूमिका से वे मानसिक रूप से बिल्कुल बँधते नहीं हैं। उपर्युक्त नाटक के मंचन से कुछ क्षण पूर्व उन्होंने सीता को अपनी इस भूमिका के विषय में स्पष्ट

71 रामचरितमानस : 3.29,ख.9,16
72 रामचरितमानस : 3.29.17
73 रामचरितमानस : 1.48.7
74 रामचरितमानस : 1.48.8

रूप से बता भी दिया था। कहा था-

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला।
मैं कछु करबि ललित नर लीला॥[75]

स्वयं भगवान शिव भी इस प्रसंग को माता पार्वती को सुनाते हुए राम के उपर्युक्त कर्म के लिए 'लीला' शब्द का ही प्रयोग करते हैं। कहते हैं-

गिरिजा सुनहु राम के लीला।[76]

एक बात और। रंगमंच पर अभिनय करते हुए राम 'मनहुँ महा बिरही अति कामी' हैं, ऐसा प्रतीत हो रहे हैं, किन्तु नेपथ्यशाला में जिस प्रकार वे 'परम प्रसन्न' बैठे हुए अपने छोटे भाई लक्ष्मण से 'रसीली कथाएँ' कहते हुए नजर आ रहे हैं, उसे देखकर लगता ही नहीं है कि कुछ देर पहले उनकी पत्नी का हरण हो चुका है और कुछ क्षण पूर्व वे उनके वियोग में 'महा विरही' एवं 'अति कामी' मनुष्य की भाँति फूट-फूटकर रो रहे थे। नेपथ्य साला के उस दृश्य का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं-

बैठे परम प्रसन्न कृपाला।
कहत अनुज सन कथा रसाला॥[77]

कहने का अभिप्राय है कि जीवन की भूमिकाओं का निर्वाह यदि हम इस समझदारी के साथ करते हैं कि सभी कृत्य हमारे लिए अभिनयमात्र हैं तो कर्ताभाव स्वत: गिर जाता है। कर्ता का भाव ही संसार है, अहंकार ही संसार है, कर्तृत्व का भाव ही बन्धन है और अकर्ता हो जाना अर्थात् अभिनेता हो जाना ही मुक्ति है, मोक्ष है। राम कर्म के कर्ता नहीं हैं, अभिनेता हैं। वे सर्वत्र मनुष्य के चरित्र की लीला कर रहे हैं, अभिनय कर रहे हैं। उनका अपना कहीं कोई चरित्र नहीं है, सब मनुष्य के चरित्र हैं और वे मनुष्य के उन चरित्रों का अभिनेतामात्र हैं। तभी तो तुलसी ने कहा है-

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥[78]

जथा अनेक वेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ॥[79]

अस रघुपति लीला उरगारी।
दनुज बिमोहनि जन सुखकारी॥[80]

अंतिम बात। योगीराज लाहिड़ी महाशय कहा करते थे कि 'अतिथिभाव' से जीवन जीना 'सत्-शुद्ध-जीवन' है। वे कहते थे-"हम सभी यहाँ अतिथि हैं। कोई भी इस जगत का स्थायी निवासी नहीं है। एक अतिथि बिना आसक्ति के, किन्तु पूर्ण सामंजस्यबोध के साथ रहता है। वह जीवन-प्रवाह के जीवन्त स्वरूप में किसी प्रकार की गड़बड़ी उत्पन्न नहीं करता है।"

गहरे में, यही यथार्थ धार्मिक जीवन है। 'अतिथिभाव' में मन कोई उपद्रव नहीं कर पाता है, क्योंकि वह यथार्थ के प्रति पूर्ण जागरूकता और सामञ्जस्यबोध में होता है, अनासक्ति में होता है। वह हर पल इस बोध और प्रज्ञा में होता है कि वह यहाँ का स्थायी निवासी नहीं है। राम सदैव इस प्रज्ञा में हैं कि वे अयोध्या में एक अतिथि हैं, एक मेहमान हैं, एक पाहुन हैं, यहाँ का स्थायी निवासी नहीं हैं। तभी तो तुलसी कहते हैं कि कमलनयन राम अपने साथ सुन्दर स्त्री और भले भाई को लेकर अपने पिता का राज्य 'बटोही' की तरह छोड़कर इस प्रकार चल देते हैं, मानो वे अयोध्या में दो ही दिन की 'पहुनाई' पर थे, यानी दो ही दिन का अतिथि बनकर थे। यथा-

संग सुभामिनि, भाइ भलो,
दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई।

75 रामचरितमानस : 3.23.1
76 रामचरितमानस : 1.112.8
77 रामचरितमानस : 3.40.4
78 रामचरितमानस : 7.72,क
79 रामचरितमानस : 7.72,ख
80 रामचरितमानस : 7.72,ख.1

राजिवलोचन रामु चले, तजि
बाप को राजु बटाउ की नाईं॥[81]

उनके अंगों ने राजोचित वस्त्रों और अलंकारों का त्यागकर उसी शोभा को प्राप्त किया, जो तोता अपने पंखों को त्यागकर प्राप्त करता है। अयोध्या को उन्होंने मार्ग-निवास के वृक्षों की तरह और वहाँ के स्त्री-पुरुषों को रास्ते के साथियों के समान त्याग दिया। यथा-

कीर के कागर ज्यों नृपचीर,
बिभूषन उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगबास के रूख ज्यों,
पंथ के साथ ज्यों लोग लोगाई॥[82]

यहाँ हम देखते हैं कि राम द्वारा 'राजसी वस्त्रों' एवं 'अलंकारों' के त्याग में किसी प्रकार का 'अहंबोध' यानी 'कर्ताभाव' नहीं है, बल्कि यह तोते द्वारा अपने पंख त्याग देने की क्रिया जैसा सहज है, नैसर्गिक है, और इसीलिए वे उसी सौन्दर्य को उपलब्ध होते हैं, जो तोता अपने पंख त्यागकर प्राप्त करता है। त्याग की सहजता ही उसका सौन्दर्य है। वास्तव में, सहजता ही सौन्दर्य है, असहज होना तो कुरूपता है। असहज होने का अर्थ है- जीवन-प्रवाह के विरुद्ध होना, स्वभाव के विपरीत होना। यह संसार-चक्र को अपनी इच्छा के अनुसार गति देने की कुचेष्टा है। ऐसा वस्तुत: आसक्ति, नासमझी और अहंकारजन्य कर्ताभाव के कारण है। राम की अयोध्या में कोई आसक्ति नहीं है, कोई मोह नहीं है। वे वहाँ रहते हुए भी नहीं रहते हैं, उनका वहाँ रहना अतिथि की तरह है। अतिथि का रहना क्या, नहीं रहना क्या? राम के लिए अबतक अयोध्या में ठहरना, मार्ग में किसी वृक्ष के नीचे किसी पथिक के ठहरने जैसा आसक्तिरहित, अस्थायी और यथार्थ के प्रति जागरूकतापूर्ण था। वे अयोध्यावासियों के साथ मार्ग में मिल जानेवाले साथियों के समान संग रहते हुए भी, निस्संग थे। इसीलिए उनके प्रति अनासक्ति और निर्मोह के कारण ही उनके लिए उनका त्याग तोते के 'पंख-त्याग' की घटना जैसा सहज है। यह उनके लिए कर्म नहीं है, अपितु जीवन-प्रवाह के सत्य की सहज स्वीकृति है। तोता अपने पंखों को त्यागता नहीं है, अपितु जीवन-प्रवाह के मूल में छिपी दिव्य ऊर्जा के नियम के अधीन पंख स्वयं तोते को छोड़कर गिर जाते हैं, त्याग की घटना उस पर से गुजर जाती है और तोते को उसका पता भी नहीं चलता। तभी तो उसका सौन्दर्य है। पता चले, तब तो 'कर्ताभाव' आ गया, तब तो 'अहंभाव' आ गया, तब तो उसका सौन्दर्य खो गया, तब तो विकृति आ गयी, कुरूपता आ गयी।

अन्त में इतना ही कि राम अद्भुत हैं, दिव्य हैं, इस अर्थ में कि वे मनुष्य भी हैं, भगवान भी हैं। उनकी लीला भी कम अद्भुत नहीं है, क्योंकि वह हमें भी मनुष्य से भगवान बनने को अनुप्रेरित करती है, बन्धन में रहते हुए भी निर्बन्ध रहने को प्रोत्साहित करती है तथा कर्म करते हुए भी अकर्म में प्रतिष्ठित रहने की प्रज्ञा प्रदान करती है।

***

81 कवितावली : 2.2

82 कवितावली : 2.1

महाकवि भास के अभिषेकनाटक में श्रीरामकथा

डॉ. नरेन्द्रकुमार मेहता

'मानसश्री, मानस शिरोमणि, विद्यावाचस्पति एवं विद्यासागर
सीनि. एमआईजी-103, व्यास नगर,
ऋषिनगर विस्तार, उज्जैन (म.प्र.)

महाकवि भास संस्कृत के प्रख्यात नाटककार रहे हैं। इनके 13 नाटकों का 'भासनाटकचक्र' उपलब्ध प्राचीनतम नाटक माने गये हैं। इन 13 नाटकों में से प्रतिमानाटक एवं अभिषेक ये दो रामकथा पर आधारित हैं। अभिषेक नाटक में वालिवध से लेकर रावणवध तक की कथा का निदर्शन भास ने इस नाटक में किया है । राम के राज्याभिषेक के साथ ही नाटक का पटाक्षेप होता है । इसमें सुग्रीव, विभाषण तथा श्रीराम के अभिषेक की कथा होने के कारण इसका नामकरण 'अभिषेक' के रूप में किया गया है। भास ने प्रतिमानाटक में अपने काव्य-कौशल से बहुत सारे रोचक प्रसंगों का वर्णन किया है, इसी प्रकार अभिषेक नाटक में भी उनहोंने अपनी शक्ति का चमत्कार दिखाया है। लेखक ने इस अभिषेक नाटक की कथावस्तु को कथा की शैली में यहाँ प्रस्तुत की है।

भारतीय साहित्य की परम्परा में रामायण को काव्यों की श्रेणी में आदिकाव्य माना जाता है। रामायण की कथा आज भी भारत में झुग्गी-झोपड़ियों से लेकर विशाल भवनों, गली-गली, महानगरों से लेकर छोटे से छोटे गाँव और आँगन में हमें बड़ी सरलता से सुनने को मिल जाती है। प्राचीन संस्कृत, प्राकृत भाषा के अतिरिक्त प्रायः सभी भारतीय प्रादेशिक भाषा में श्रीरामकथा का अपने प्रदेश के रीति रिवाज और संस्कृति में रंगा हुआ वर्णन इनमें मिल जाता है। रामायण और महाभारत काल के उपरान्त अद्यावधि ज्ञात सन्दर्भों में श्रीरामकथा को अपने साहित्य में गढ़ने-रचनेवाले सबसे प्राचीन और सबसे पहले महाकवि भास ही दिखाई देते हैं। महाकवि भास के नाटकों में प्रसिद्ध नाटक अभिषेकनाटक तथा प्रतिमानाटक श्रीरामकथा पर आधारित है। अतरू सर्वप्रथम अभिषेक नाटक की श्रीरामकथा की कथावस्तु संक्षिप्त में नई पीढ़ी को दी जा रही है।

अभिषेकनाटक की कथावस्तु का प्रारम्भ किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड एवं युद्धकाण्डों में वर्णित कथानक के कुछ अंशों को लेकर किया गया है। इस नाटक की विशेषता यह है कि पुरुष पात्रों की संख्या लगभग मात्र तेईस से अधिक है तो दूसरी तरफ कुछ प्रमुख राक्षसियों को छोड़कर जिनकी संख्या अनिश्चित है। स्त्री पात्र के रूप में केवल सीताजी तथा तारा (बालि की पत्नी) ही मंच पर दिखाई गई है।

सूत्रधार पारिपार्श्विक के बहाने दर्शकों को सूचित करता है कि सीताजी के अपहरण से संतृप्त श्रीराम तथा अयोध्या के राज्य से वंचित एवं पत्नी पर बलपूर्वक अधिकार से दुरूखी वानरपति सुग्रीव परस्पर सहायता के लिए मिलकर सुग्रीव के अग्रज बालि को मारने का प्रयास करत रहे हैं।

सूत्रधार कहता है-

इदानीं राज्यविभ्रष्टं सुग्रीवं रामलक्ष्मणौ।
पुनःस्थापयितुं प्राप्ताविन्द्रं हरिहराविव॥

प्रथम अंक में इसी सूचना के साथ ही स्थापना सम्पन्न होती है। श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव और हनुमानजी के प्रवेश से नाटक का प्रारम्भ होता है। उपस्थित पात्रों के कथोपकथन से यह लगता है कि किष्किन्धा के प्रदेश में आ पहुँचे हैं तथा सुग्रीव श्रीराम की सहायता से बालि से युद्ध के लिए तैयार हो जाता है। दूसरी तरफ तारा अपने पति बालि को युद्ध करने से रोकती है तथा बालि उसको छोड़कर अन्तरूपुर में लौटने के लिए विवश करता है। बालि सुग्रीव पर प्रहार करता है और दोनों का युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। इस द्वन्द्व युद्ध में श्रीराम, लक्ष्मण और हनुमान् मात्र दर्शक के रूप में भूमिका में रहते हैं। तदनन्तर बालि के प्रहार से आहत होकर सुग्रीव भूमि पर गिरते हैं। हनुमानजी परिस्थिति के अनुरूप श्रीराम को उचित कदम उठाने के लिये कहते हैं। क्षणभर में ही श्रीराम के बाण से आहत बालि भूमि पर गिर पड़ता है। बालि बाण पर श्रीराम का नाम देखकर श्रीराम के अनुचित प्रहार की निन्दा करता है। वह इस श्रीराम के प्रहार को धर्म-विरुद्ध बताता है। श्रीराम बालि को दण्डनीय अपराधी निरूपित करते हुए अपने कृत्य को न्यायपूर्ण एवं उचित बताते हैं। नेपथ्य से स्त्रियों के विलाप की आवाज आती है, बालि उन्हें रोकने के लिये सुग्रीव से कहता है। सुग्रीव हनुमानजी को भेजता है। हनुमानजी अंगद को साथ लेकर आते हैं। अंगद अपने पिता की इस अवस्था को देखकर गिर पड़ता है। बालि सुग्रीव को राज्यभार अर्पित करते हुए अंगद को उसके हाथों में सौंपता है तथा श्रीराम से यह प्रार्थना करता है कि वे इन दोनों (अंगद तथा सुग्रीव) पर दया दृष्टि बनाए रखें। बालि अपने गले से वंश की प्रतिष्ठा की प्रतीक स्वर्णमाला उतारकर सुग्रीव को अर्पित कर देता है। बालि हनुमानजी को जल लाने का कहता है और जल से आचमन कर मंच पर ही प्राण त्याग देता है। श्रीराम सुग्रीव को बालि के अंतिम संस्कार की और लक्ष्मण को सुग्रीव के राज्याभिषेक की आज्ञा देते हैं तथा इस के साथ यहाँ पहला अंक समाप्त होता है।

द्वितीय अंक के प्रारम्भ में एक संस्कृत भाषी पात्र ककुभ तथा एक प्राकृत भाषी पात्र बिलमुख के द्वारा प्रथम तथा द्वितीय अंकों के मध्यवर्ती कथानक की सूचना के लिए विष्कम्भक की नाट्य योजना का प्रयोग किया गया है। ककुभ कहता है कि सभी संकल्पित कार्य पूरे कर वानर भोजन कर रहे हैं। अतएव वह भी भोजन के लिए बैठ जाता है। थोड़े अन्तराल में बिलमुख आता है और सूचित करता है कि महाराज सुग्रीव के द्वारा सीताजी की खोज के लिए सभी दिशाओं में भेजे गए वानर लौट आए हैं। दक्षिण की ओर अंगद जो समाचार लाए हैं उसकी सूचना महाराज (सुग्रीव) तक पहुँचानी है और इसलिए वह कुमार अंगद से मिलना चाहता है। ककुभ से उसे यह समाचार ज्ञात होता है कि सीताजी के अन्वेषण का आधा कार्य सम्पन्न हो गया है। गृध्रराज सम्पाति से लंका में सीताजी का समाचार जानकर पवनसुत हनुमानजी लंका पहुँचने के लिए महेन्द्र पर्वत पर चढ़कर वायुमार्ग से समुद्र को पार कर चुके हैं। इसी सूचना के साथ दोनों पात्र अंगद के पास चले जाते हैं। विष्कम्भक के उपरान्त द्वितीय अंक का दृश्य-विधान लंका में राक्षसी-वृन्द के मध्य बैठी हुई सीताजी के प्रवेश से होता है। सीताजी अपनी दुर्दशा और श्रीराम

की वर्तमान स्थिति पर चिन्ता करती है। इसी बीच हाथ में अँगूठी लिए हनुमानजी का प्रवेश होता है। हनुमानजी को अभी तक कहीं भी सीताजी नहीं मिली है। वे प्रमद-वन की ओर जाते हैं और राक्षसियों के मध्य सीताजी को देखते हैं। अभी भी हनुमानजी को सीताजी को पहचानने का अवसर ही नहीं प्राप्त होता है तथा इसी तरह जलती मशालों के प्रकाश में उन्हें रावण आता हुआ दिखाई पड़ता है। हनुमानजी अशोक वृक्ष की कोटर में छिप कर रावण की बातें सुनते हैं। रावण के वार्तालाप से हनुमानजी को एक ओर तो सीताजी का ठीक ठीक परिचय मिल जाता है और दूसरी ओर सीताजी के पातिव्रत्य तेज से भयभीत रावण की अभी तक सीताजी को अपनी ओर आकृष्ट करने में प्राप्त असफलता और विवशता का बोध हो जाता है। रावण नेपथ्य से स्नानवेला की घोषणा सुनकर वहाँ से चला जाता है।

रावण के चले जाने के बाद हनुमानजी सीताजी को अपना परिचय देते हैं। सीताजी पहले तो रावण की राक्षसी माया ही समझती है किन्तु बाद में हनुमानजी की बातों से उन्हें कुछ विश्वास हो जाता है। हनुमानजी श्रीराम को लंका लाने का वचन देते हैं और सीता इस कार्य में उनकी सफलता के लिए आशीर्वाद प्रदान करती है। किसी प्रकार से हनुमानजी अपने लंका आगमन की सूचना रावण तक पहुँचाने के उद्देश्य से लंकापति के सुन्दर कानन को नष्ट करने का निर्णय लेते हैं और इसी के साथ द्वितीय अंक समाप्त हो जाता है।

तृतीय अंक अशोक वाटिका के उजड़ने के समाचार से प्रारम्भ होता है। शंकुकर्ण द्वारपालिका विजया से वाटिका विध्वंस की सूचना तुरन्त महाराज तक पहुँचाने के लिए कहता है और देखता है कि विजया के जाने के बाद स्वयं रावण वहीं आ जाता है। रावण शंकुकर्ण से सारा वृत्तांत जानना चाहता है। शंकुकर्ण बतलाता है कि किसी अज्ञात वानर ने अशोक वाटिका को उजाड़ दिया है। वह वानर बड़ा शक्तिशाली होना चाहिए क्योंकि उसने बड़े-बड़े साल के वृक्ष कमलनाल की भाँति एकाएक उखाड़ फेंक दिए हैं तथा दारू पर्वत को मुष्टि प्रहार से ही विध्वंस कर दिया है। ऐसी दशा में वह उस वानर को पकड़ने के लिए रावण से समुचित सैनिक व्यवस्था के लिए निवेदन करता है। हनुमानजी को पकड़ने के लिए भेजे गए एक हजार सैनिक मारे जाते हैं। तदनन्तर रावण अक्षयकुमार को भेजता है। उसके साथ पाँच सेनापति भी जाते हैं। हनुमानजी को पकड़ने गए पाँचों सेनापति सहित अक्षयकुमार हनुमानजी के हाथों मारे जाते हैं। तदनन्तर इन्द्रजित वानर को पकड़ने के लिए जाते हैं। अन्त में रावण को यह समाचार मिलता है कि तुमुल युद्ध के उपरान्त वानर बाँध लिया गया है तब रावण दुःखी मन से विभीषण को बुलवाता है।

रावण के आदेशानुसार विभीषण चिन्तातुर अवस्था में उपस्थित होता है। उसे इस बात का अत्यन्त दुरूख होता है कि रावण ने सीताजी को लौटा देने की सलाह नहीं मानी। विभीषण इसी को वर्तमान संकट की जड़ (मूल) मानता है। वानर लाने के लिए रावण विभीषण को भेजता है और राक्षसों से चारों ओर घिरे हुए पाशबद्ध हनुमानजी का प्रवेश होता है। हनुमानजी दर्शकों को बताते हैं कि रावण से मिलने की तीव्र उत्कण्ठा के कारण उन्होंने स्वयं ही बन्धन को स्वीकार किया है। हनुमानजी अपना परिचय देकर श्रीराम का सन्देश सुनाते हैं। रावण को किसी मनुष्य की आज्ञा स्वीकार करने में आपत्ति है। हनुमानजी रावण से पूछते हैं कि ऐसी स्थिति में उसने छिपकर सीताजी का हरण क्यों किया? विभीषण हनुमानजी की बातों का समर्थन करता है। रावण सर्वप्रथम तो हनुमानजी की पूँछ में आग लगाकर छोड़ने की आज्ञा देता है परन्तु उसी क्षण अपना निर्णय बदलकर हनुमानजी के द्वारा श्रीराम को युद्ध का निमन्त्रण भेजता

है। हनुमानजी के प्रस्थान के बाद रावण और विभीषण में परस्पर चर्चा होती है। विभीषण श्रीराम को अधिक शक्तिशाली बताता है जो रावण के लिए असह्य हो जाता है। रावण विभीषण को निर्वासित करना चाहता है परन्तु विभीषण राक्षस कुल के उद्धार के लिए स्वयं ही रावण को त्यागकर श्रीराम की शरण में जाने की घोषणा करता है। विभीषण के प्रस्थान के उपरान्त रावण भी नगर रक्षा का प्रबन्ध करने के लिए प्रस्थान करता है तथा यहीं तृतीय अंक समाप्त हो जाता है।

चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में नियोजित विष्कम्भक के द्वारा काञ्चकीय और सुग्रीव के सेनापति के संवाद से रावण पर आक्रमण के लिए सैनिक तैयारी की सूचना मिलती है। श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव एवं हनुमानजी के प्रवेश से ज्ञात होता है कि वे सघन वन पर्वतमाला और नदियों को पारकर समुद्र तट तक आ गए हैं किन्तु आगे का मार्ग समुद्र के कारण अवरुद्ध हो गया है। इस बीच सुग्रीव को आकाश से उतरता हुआ और राक्षस दिखाई देता है। हनुमानजी वानर सेना को तुरन्त सावधान करते हैं। श्रीराम हनुमानजी को उत्तेजित होने से रोकते हैं। इसी बीच विभीषण का प्रवेश होता है। हनुमानजी उन्हें पहचान कर श्रीराम को सूचित करते हैं कि धर्मात्मा विभीषण शरणागत के रूप में उपस्थित हुआ है।

विभीषण समुद्र पार करने के लिए श्रीराम को दिव्यास्त्र के प्रयोग का परामर्श देता है। श्रीराम उसका परामर्श मान लेते हैं किन्तु अस्त्र प्रयोग के पहले ही जल देवता वरुण का प्रवेश होता है। वरुण श्रीराम के समक्ष प्रणत होकर समुद्र का मार्ग प्रदान करते हैं। समुद्र के द्वारा प्रदत्त मार्ग से समूची सेना के साथ सभी लंका पहुँचते हैं।

श्रीराम की आज्ञा से सुग्रीव सुवेल पर्वत पर सेना-निदेश के लिए नील को निर्देश देता है। सेना निदेश से नील दो ऐसे वानरों को पकड़ लाता है जिनकी पहचान सिद्ध नहीं हो पाती है। विभीषण इन दोनों वानरों को पहचान लेता है और बतलाता है कि ये दोनों न वानर हैं और न सैनिक है। ये रावण के विश्वास प्राप्त मन्त्री शुक और सारण है। श्रीराम विभीषण के प्रस्ताव पर उन्हें दण्डित करने की अपेक्षा उनके द्वारा रावण को सन्देश भेजते हैं कि युद्ध के लिए राम रावण के द्वार पर उपस्थित हो गए हैं। इसी समय सूर्यास्त होने के कारण चतुर्थ अंक यही पर समाप्त हेा जाता है।

पंचम अंक के प्रारम्भ में भी एक विष्कम्भक की योजना है। विष्कम्भक का प्रारम्भ लंकापति रावण के काञ्चुकीय के प्रवेश से होता है। काञ्चुकीय राक्षक प्रतीहारी को बुलाता है और उसके द्वारा विद्युज्रिह को बुला भेजता है। काञ्चुकीय रावण के व्यवहार पर दुरूखी प्रतीत होता है। वह देख रहा है कि श्रीराम के हाथों कुम्भकर्ण आदि अनेक वीर मारे गए हैं, फिर भी रावण सीता के लिए अपने दुराग्रह को छोड़ नहीं रहा है। विद्युज्रिह के आने पर काञ्चुकीय उसे लंकापति रावण की ओर से आज्ञा देता है कि वह शीघ्र ही राम लक्ष्मण के सिरों के दो पुतले पहले बनाकर महाराज रावण के पास पहुँचा दे। विद्युजिन्ह को यह आज्ञा देकर वह रावण से मिलने के लिए प्रस्थान करता है और इसी के साथ विष्कम्भक समाप्त हो जाता है।

पंचम अंक का मुख्य दृश्य चिंतामग्न सीताजी के प्रवेश से होता है। सीताजी नाना प्रकार की आशंकाओं से खिन्न अवस्था में है और इसी बीच रावण वहाँ दिखाई देता है। रावण राज्य लक्ष्मी का पीछा कर रहा है। रावण की राज्यलक्ष्मी रावण को छोड़कर श्रीराम के पास जाना चाहती है। रावण उसे पुनरू बलपूर्वक ग्रहण करने की इच्छा व्यक्त करते हुए उसका पीछा छोड़कर सीताजी की ओर मुड़ जाता है। वह सीताजी को अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयास करता है। सीताजी उसका उपहास करती है और वहीं श्रीराम और लक्ष्मण के कटे हुए सिर हाथ में लिए एक राक्षस का प्रवेश होता है। वह राक्षस श्रीराम और लक्ष्मण के

कटे हुए सिर देखकर सीताजी रावण से कहती है कि जिस तलवार से ये सिर काटे गए हैं उसी से उसकी भी हत्या कर दी जाएं। इस पर रावण सीताजी से कहता है कि जब इन्द्रजित ने युद्ध में लक्ष्मण और उसके भाई को मार डाला तब तुम्हारी रक्षा कौन करेगा? उसी समय नेपथ्य से आवाज आती है- राम! राम! और एक घबराया हुआ राक्षस प्रवेश करता है। वह सीताजी के समक्ष ही रावण को सूचित करता है कि श्रीराम ने इन्द्रजित का वध कर दिया है। इतना सुनते ही रावण मूच्छित हो जाता है। नेपथ्य से आवाज आती है कि श्रीराम रावण से युद्ध के लिए आगे बढ़ रहे हैं। रावण उसी क्षण सीताजी को मार डालना चाहता है किन्तु अनुचर राक्षस के कहने पर स्त्री-वध का दुस्साहस छोड़ कर युद्ध के लिए रथ लाने का आदेश देता है। रथ के उपस्थित होने पर वह रथ पर बैठकर सीता से यह कहते हुए प्रस्थान करता है कि वह शीघ्र ही राम को मरा हुआ देखेगी। सीताजी ईश्वर से प्रार्थना करती है कि यदि उसने अपने कुल शील परम्परा के अनुसार केवल श्रीराम का ही अनुसरण किया हो तो युद्ध में श्रीराम को ही विजय प्राप्त हो। इसी के साथ ही पंचम अंक यहाँ समाप्त होता है।

षष्ठ अंक का मुख्य दृश्य विजयी श्रीराम के प्रवेश से होता है। श्रीराम सीताजी को आश्वस्त करने के लिए आगे बढ़ रहे हैं, इसी बीच लक्ष्मण का प्रवेश होता है, वह सीताजी के आगमन की सूचना देता है। श्रीराम कुछ आशंकित होकर कहते हैं कि- हरण के बाद शत्रु के घर में रही सीता को देखकर क्रोध से मेरा धैर्य नष्ट हो जाएगा। यह सुनकर लक्ष्मण जाता है और विभीषण का प्रवेश होता है। श्रीराम विभीषण को रोकते हुए कहते हैं कि राक्षसों के स्पर्श से दूषित इक्ष्वाकु वंश के लिए कलंकभूत सीता का मेरे समक्ष आना उचित नहीं है। अकरणीय कार्यों की ओर उन्मुख व्यक्ति को रोकने वाला ही मित्र होता है, अन्यथा वह शत्रु है। यह सुनकर विभीषण दया की प्रार्थना करता है और लक्ष्मण यह सूचना लेकर उपस्थित होता है कि आप के विचारों को जानकर आर्या सीता अग्नि में प्रवेश के लिए आपके आदेश की प्रतीक्षा कर रही है। यह सुनकर श्रीराम कहते हैं कि उनकी इच्छा पूरी करो। किंकत्रव्य विमूढ़ लक्ष्मण जाता है और घबराकर इस सूचना के साथ लौटता है कि सीताजी श्रीराम के सारे परिश्रम को विफल कर अग्नि में प्रवेश कर रही है।

इधर पीछे से हनुमानजी आते हैं और सूचित करते हैं कि सीताजी कहीं अधिक प्रभामण्डित होकर अग्नि में से ज्यों की त्यों निकल कर आई हैं। श्रीराम आश्चर्यचकित होकर पूछते हैं- कहाँ कहाँ? और सुग्रीव आकर सूचित करता है कि कोई दिव्य पुरुष जीवित जानकी को साथ लेकर धधकती अग्नि से निकलकर आ रहा है। श्रीराम देखकर अग्निदेव को पहचानते हैं और अग्निदेव के पास पहुँच जाते हैं। अग्निदेव श्रीराम से कहते हैं कि जनक तनया साक्षात् लक्ष्मी है और मनुष्य रूप में आपके पास आई है। श्रीराम अग्निदेव के इस अनुग्रह को स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि सीता की शुद्धता को जानते हुए भी लोगों के विश्वास के लिए ही उन्होंने सब कुछ कहा था। नेपथ्य से देव, गन्धर्व आदि का स्तुति गायन सुनाई देता है और अग्निदेव श्रीराम को अभिषेक के लिए आमंत्रित करते हैं। श्रीराम की जय जयकार की ध्वनि होती है और अग्निदेव सूचित करते हैं कि इन्द्र के आदेश से भरत, शत्रुघ्न और प्रजाजन सभी उपस्थित हो गए हैं। यहीं भरतवाक्य के साथ षष्ठ अंक और नाटक समाप्त हो जाता है।

महावीर मन्दिर समाचार

मन्दिर समाचार

(नवम्बर, 2023ई.)

11 नवंबर को महावीर मन्दिर में हनुमान जयंती का आयोजन

मन्दिर में रामचरितमानस के नवाह पाठ का नौ दिवसीय कार्यक्रम

पवनपुत्र हनुमानजी के दो विग्रहों वाले पटना के प्रसिद्ध महावीर मन्दिर में कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी के दिन 11 नवंबर को हनुमान जयंती का आयोजन हुआ। हनुमान जयंती के उपलक्ष्य में महावीर मन्दिर में रामचरितमानस का नवाह पाठ किया जा रहा है। 3 नवंबर दिन शुक्रवार को कलश स्थापन के साथ 9 दिवसीय रामचरितमानस का नवाह पाठ शुरु हुआ। महावीर मन्दिर के ऊपरी तल्ले पर मुख्य पुरोहित पंडित जटेश झा की देखरेख में नवाह पाठ का आयोजन किया गया। मधुबनी जिले से आयी 11 सदस्यीय मंडली द्वारा मन्दिर के ऊपरी तल पर प्रतिदिन रामचरितमानस का नवाह पाठ किया गया। इस नवाह पाठ में कुछ स्थानीय श्रद्धालु भी सम्मिलित हुए। हनुमान जयंती तक सुबह 8 बजे से दोपहर 2 बजे तक रामचरितमानस का सामूहिक पाठ हुआ। इसके लिए महावीर मन्दिर के ऊपरी तल पर विशेष पंडाल बनाया गया। वहाँ भक्तों के बैठने की व्यवस्था भी की गयी। हनुमान जयंती के दिन 11 नवंबर को महावीर मन्दिर परिसर में स्थित मुख्य ध्वज स्थल पर ध्वज पूजा हुई। इसके बाद दो ध्वज बदले गये। हनुमान जी को विशेष भोग लगाया गया और भक्तों के बीच प्रसाद का वितरण हुआ। महावीर मन्दिर में दशकों से कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी यानि दीपावली के एक दिन पहले हनुमान जयंती मनायी जाती है।

महावीर मन्दिर में हनुमान जयंती पर बजरंगबली का जयघोष

अंजना नंदन को सवा मनी नैवेद्यम का भोग, हनुमान लला की आरती

महावीर मन्दिर में शनिवार को हनुमान जयंती का आयोजन पूरे विधि-विधान से किया गया। कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को हनुमान जयंती के अवसर पर महावीर मन्दिर में सुबह साढ़े दस बजे पूजन शुरू हुआ। मन्दिर परिसर में स्थित मुख्य ध्वज स्थल पर ध्वज पूजा हुई। महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल यजमान की भूमिका में थे। महावीर मन्दिर की पत्रिका धर्मायण के सम्पादक पंडित भवनाथ झा की देखरेख में मन्दिर के पुरोहितों ने वैदिक मंत्रों से ध्वज पूजा करायी।

इसके बाद मुख्य ध्वज और शनिदेव के निकट स्थित ध्वज बदले गये। पूजन स्थल पर हनुमान लला की आरती की गयी। हनुमान जयंती के अवसर पर दो विग्रहों वाले हनुमान जी को सवा मनी नैवेद्यम का भोग लगाया गया। इसके साथ ही हलवा का विशेष भोग भी लगाया गया। आखिर में गर्भगृह के सम्मुख मध्याह्न 12 बजे अंजना नंदन हनुमानजी की जन्म आरती हुई। आरती के बाद मन्दिर प्रांगण में उपस्थित भक्तों के बीच प्रसाद का वितरण किया गया। हनुमान जयंती के अवसर पर महावीर मन्दिर में चल रहे रामचरितमानस के 9 दिवसीय नवाह पाठ का समापन भी शनिवार को हुआ। हनुमान जयंती की मुख्य पूजा के बाद महावीर मन्दिर में संध्या काल में हवन भी हुआ। हनुमान जयंती के कार्यक्रम में मुख्य रूप से महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य आचार्य किशोर कुणाल के अलावा मन्दिर प्रबन्धन से जुड़े प्रदीप जैन और बड़ी संख्या में भक्तजन उपस्थित थे। आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि प्रख्यात सन्त रामानन्दाचार्य ने वैष्णव मताब्ज भास्कर में कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को महावीर हनुमान जी के जन्म का उल्लेख किया है। महावीर मन्दिर समेत उत्तर भारत के अधिकांश स्थानों पर इसी मान्यता के अनुसार हनुमान जयंती मनायी जाती है।

छठ के बाद बिहार से वापस लौटनेवाले यात्रियों को महावीर मन्दिर निःशुल्क अल्पाहार पैकेट

रेल प्रशासन ने महावीर मन्दिर के परोपकारी कार्यों को देखते हुए किया था अनुरोध 21 से 24 नवंबर तक कुल 40 हजार जलपान पैकेट बंटें। छठ पूजा के बाद बिहार से दूसरे राज्यों में वापस अपने कार्यस्थल लौटनेवाले यात्रियों को महावीर मन्दिर की ओर से निःशुल्क स्वादिष्ट अल्पाहार दिया गया। 21 से 24 नवंबर तक पटना जंक्शन के होल्डिंग एरिया में महावीर मन्दिर की ओर से प्रतिदिन 10-10 हजार अल्पाहार पैकेट बाँटे गये। वितरण की सुविधा के लिए आईआरसीटीसी के माध्यम से यात्रियों को महावीर मन्दिर की ओर से जलपान के पैकेट मिले। महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि रेल प्रशासन के अनुरोध पर महावीर मन्दिर ने यह व्यवस्था की गयी। दीपावली और छठ महापर्व के बाद 21 से 24 नवंबर तक बिहार के विभिन्न जिलों से पटना जंक्शन से भारी संख्या में रेल यात्रियों के लौटने का अनुमान रेल प्रशासन ने किया था। दानापुर रेल मंडल के वरीय मंडल वाणिज्य प्रबन्धक सरस्वती चंद्र ने महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल को भेजे गये पत्र में लिखा कि महावीर मन्दिर हनुमानजी को समर्पित भारत के सबसे पवित्र हिन्दू मन्दिरों में है। आस्था का यह केन्द्र वर्षों से सनातन परम्पराओं के संवर्धन एवं जनकल्याण के कार्यों में अग्रणी रहा है। पत्र में छठ महापर्व के बाद बिहार से देश के अन्य प्रान्तों में रोजगार करनेवाले बिहारवासियों की वापसी यात्रा के लिए कई स्पेशल गाड़ियों के परिचालन की बात कही गयी।

हलवा और लिट्टी का वितरण किया गया।

बिहार से वापस अपने कार्यस्थल लौटनेवाले श्रद्धालुओं को अल्पाहार में बिहारी व्यंजन लिट्टी के साथ हलवा दिया जाएगा। इतनी तादाद में अल्पाहार पैकेट तैयार करने के लिए महावीर मन्दिर की ओर से नैवेद्यम प्रभारी आर शेषाद्री की देखरेख में कारीगरों की टीम लग गयी है। आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि महावीर मन्दिर की ओर से यह सेवा निःशुल्क होगी। इसके लिए किसी से भी कोई शुल्क नहीं लिया जाएगा।

राम-रसोई में प्रतिदिन हजारों श्रद्धालुओं को निःशुल्क भोजन

आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि अयोध्या में महावीर मन्दिर की ओर से निःशुल्क राम रसोई चलायी जा रही है। श्रीराम जन्मभूमि के एकदम समीप अमावा राम मन्दिर परिसर में महावीर मन्दिर की राम रसोई में प्रतिदिन हजारों श्रद्धालुओं को निःशुल्क भर पेट स्वादिष्ट भोजन दिया जाता है। माता जानकी के जन्म स्थान पुनौराधाम में भी महावीर मन्दिर की ओर से सीता रसोई के माध्यम से श्रद्धालुओं को निःशुल्क भोजन कराया जाता है।

देवोत्थान एकादशी पर अनन्त शय्या से जगे भगवान विष्णु

महावीर मन्दिर में ईख के मंडप में शालग्राम भगवान की पूजा में बड़ी संख्या में एकादशी व्रती भी हुए सम्मिलित कार्तिक शुक्ल एकादशी यानी देवोत्थान एकादशी के पावन अवसर पर महावीर मन्दिर में पूरे विधि-विधान से भगवान शालग्राम की पूजा हुई। ईंख से बने मंडप में चौकी पर विराजमान शालग्राम स्वरूप भगवान विष्णु का वैदिक मंत्रोच्चार के साथ पूजन किया गया। इस मंडप के निकट तुलसी जी को भी विराजित कर पूजन किया गया। गुरुवार को संध्या काल में महावीर मन्दिर में दक्षिण पूर्व कोने पर स्थित सत्यनारायण भगवान यानी भगवान विष्णु की प्रतिमा के समक्ष पंडित जटेश झा की देखरेख में पूजन हुआ। शालग्राम भगवान को पंचामृत से स्नान कराकर उन्हें चंदन-तिलक किया गया। पुष्प-पान चढ़ाए गये। नैवेद्यम-फल का भोग लगाया गया। इस अवसर पर महावीर मन्दिर की पत्रिका धर्मायण के संपादक पंडित भवनाथ झा ने बताया कि देवोत्थान एकादशी पर भगवान विष्णु के अनन्त शैय्या से जगते ही सारे मांगलिक कार्य शुरू हो गये। आषाढ़ शुक्ल एकादशी यानि हरिशयनी एकादशी के दिन भगवान शयन पर चले गये थे। भाद्र शुक्ल एकादशी को भगवान ने करवट लिया जिसे पार्श्व परिवर्तनी एकादशी कहा जाता है। कार्तिक शुक्ल एकादशी को भगवान शयन से उठे जिसे देवोत्थान या प्रबोधिनी एकादशी भी कहा जाता है। महावीर मन्दिर में इस वार्षिक पूजन के आखिर में चौकी पर विराजमान भगवान शालग्राम को ईख-मंडप समेत तीन बार उठाकर उन्हें निद्रा से जगाया गया। पूजन के दौरान इन मंत्रों का प्रयोग किया गया-

ब्रह्मेन्द्ररुद्रैरभिवन्द्यमानो भवान् ऋषिर्वन्दितवन्दनीयः।
प्राप्ता तवेयं किल कौमुदाख्या जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ॥
मेघा गता निर्मलपूर्णचन्द्रशारद्यपुष्पाणि मनोहराणि।
अहं ददानीति च पुण्यहेतोर्जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते।
त्वया चोत्थीयमानेन उत्थितं भुवनत्रयम्॥

ये मन्त्र इसी रुप में कमसे कम 1000 वर्षों से मिलते हैं।अनन्त भगवान के इस जागरण पूजन में पंडित जटेश झा के निर्देशन में पंडित भवनाथ झा, गजानन जोशी, सौरभ पांडेय, माधव उपाध्याय, सुरेश पी, रोहित पांडे ने पूजन संपन्न किया। इस अवसर पर बड़ी संख्या में एकादशी व्रती भी सम्मिलित हुए। आखिर में उपस्थित भक्तों के बीच फल प्रसाद का वितरण किया गया।

अरविन्द मानव की पुस्तक भागवत महापुराण के हिन्दी पद्यानुवाद का हुआ लोकार्पण

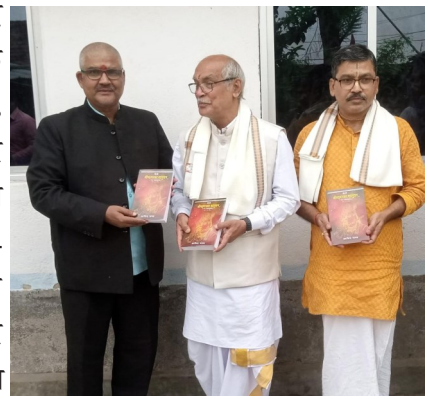

विष्णुधाम सामस के निवासी और हिन्दी के प्रसिद्ध कवि अरविन्द मानव ने अतीत में चार वर्षों के अथक परिश्रम से भागवत महापुराण के 18000 श्लोकों का खड़ी बोली हिन्दी में गाने लायक पद्यानुवाद किया था, उसका प्रकाशन पटना के महावीर मन्दिर से हुआ है। सम्पूर्ण पुस्तक चार खण्डों में प्रकाशन के लिए तैयार है। सन् 2006 ई. में इसके दसवें स्कन्ध का प्रकाशन एक बार हो चुका है। अबकी बार पहले खण्ड के रूप में 1-4 स्कन्धों का प्रकाशन हुआ है। इसका लोकार्पण आज विष्णुधाम महात्सव के दौरान सामस में श्रीराधाकृष्ण ठाकुरबाड़ी में हुआ। इस मौके पर भागवत-कथा के मर्मज्ञ पं. रणधीर चौधरी भी उपस्थित थे। उन्होंने बतलाया कि इस पुस्तक के विमोचन होने से भागवत कथा के वाचकों को अपनी प्रस्तुति देने में बहुत आसानी होगी। वे भक्ति-भावपूर्ण कीर्तन की शैली में इसे प्रस्तुत कर सकेंगे तथा श्रोता भी मूल भागवत का आनन्द उठा सकेंगे। महावीर मन्दिर के प्रकाशन प्रभारी पं. भवनाथ झा ने अपना उद्गार व्यक्त किया कि लगभग 500 वर्षों से भागवत महापुराण को जन-जन तक पहुँचाने के लिए हमारे सन्त कवियों ने इसे जनभाषा के माध्यम से लिखने का प्रयास किया है। लेकिन आज उनकी भाषा भी सामान्य पाठक के लिए अपरिचित हो चुकी है। अतः खड़ीबोली में एक गेय पद्यानुवाद की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा था, जिसकी पूर्ति अरविन्द मानव ने की है। उन्होंने बतलाया कि अगले कुछ महीनों में सम्पूर्ण भागवत के मुद्रण के लिए हमलोग प्रयास कर रहे है। भागवत का इस प्रकार का अनुवाद सुधी पाठकों के लिए तथा भक्तों के लिए समान रूप से उपयोगी होगा। इस लोकार्पण कार्यक्रम में महावीर मन्दिर की ओर से कवि श्री अरविन्द मानव को सम्मानित किया गया। भागवत के मर्मज्ञों ने इस पुस्तक को हाथों हाथ लिया है। विमोचन के दिन ही इसकी पचास प्रतियाँ बिक गयी। श्री अरविन्द मानव ने बतलाया कि मैंने जो लिखा उसे भगवान् के श्रीचरणों में तथा लोक में अर्पित किया। अब पाठक इससे यदि लाभान्वित होते हैं तो इसे हम भगवान् श्रीकृष्ण का प्रसाद मानेंगे।

महावीर वात्सल्य अस्पताल में 31 रक्तवीरों ने किया रक्तदान

महावीर वात्सल्य अस्पताल के चार सीनियर डॉक्टरों ने रक्तदान किया

महावीर वात्सल्य अस्पताल में आयोजित रक्तदान शिविर में 31 रक्तवीरों ने रक्तदान किया। महावीर वात्सल्य ब्लड सेंटर में यूबीक फाउंडेशन के सहयोग से आयोजित इस मेगा कैंप का उद्घाटन महावीर वात्सल्य अस्पताल के अपर निदेशक और पूर्व आईएएस अधिकारी रामबहादुर यादव ने किया। रक्तदान की शुरुआत महावीर वात्सल्य ब्लड सेंटर के प्रभारी डॉ. एस कौशलेन्द्र और रेडियोलॉजिस्ट डॉ सुमन ने रक्तदान कर किया। मेडिसिन विभाग के डॉ अभिषेक और डॉ. अमित ने भी रक्तदान किया। इस अवसर पर अपर निदेशक रामबहादुर यादव ने कहा कि ब्लड देकर हम जीवनदान देते हैं। युवा पीढ़ी को इसमें आगे आना चाहिए। अपर निदेशक ने कहा कि रक्तदान महान मानवीय कार्य है। इसकी जितनी प्रशंसा की जाए, कम है। इस अवसर पर महावीर वात्सल्य अस्पताल के शिशु रोग विभाग के डॉ. बिनय रंजन ने कहा कि रक्तदान को लेकर समाज में जागरूकता कम है। यह धारणा गलत है कि रक्तदान करने से कमजोरी होती है। बल्कि इससे रक्त संचार नियंत्रित होने के साथ-साथ रूटीन जांच होने का स्वाभाविक फायदा मिलता है। रक्तदान शिविर में उपस्थित नेत्र रोग विशेषज्ञ डॉ प्रवीण ने कहा कि महावीर वात्सल्य ब्लड सेंटर में रक्तदान करनेवालों की अच्छी संख्या देखकर उन्हें सुखद एहसास हुआ। महावीर वात्सल्य अस्पताल के स्त्री एवं प्रसव रोग विभाग की डॉ.अनामिका पांडेय ने इस अवसर पर कहा कि महावीर वात्सल्य ब्लड सेंटर के द्वारा बहुत मरीजों को नया जीवन मिला है। तुरंत ब्लड मुहैया कराने में ब्लड सेंटर बहुत उपयोगी साबित हो रहा है। इस अवसर पर रक्तदान करनेवाले महावीर वात्सल्य ब्लड सेंटर के प्रभारी डॉ.एस कौशलेन्द्र ने कहा कि एक रक्तदान से तीन लोगों को जीवनदान मिलता है। रक्तदान से प्राप्त होल ब्लड को महावीर वात्सल्य ब्लड सेंटर में पीआरबीसी, प्लाज्मा और प्लेटलेट्स तीन भागों में बांटा जाता है। इससे तीन लोगों को जरूरत के हिसाब से ब्लड कंपोनेंट्स मुहैया कराया जाता है। इस मेगा ब्लड डोनेशन कैंप में यूबीक फाउंडेशन की शिखा मेहता, श्वेता मेहता भी मौजूद थीं। महावीर वात्सल्य अस्पताल की ओर से रक्तदान करनेवाले कर्मियों में नीलेश पांडेय, वीरेन्द्र कुमार, हरीश नैय्यर, मनीष, प्रकाश शामिल थे। बड़ी संख्या में महावीर पैरामेडिकल और नर्सिंग संस्थान के छात्र-छात्राओं ने भी रक्तदान के साथ-साथ इसमें सहयोग प्रदान किया।

ढाई साल के बच्चे के हृदय के दो जन्मजात छिद्र एक साथ बंद हुए

महावीर वात्सल्य अस्पताल में दूरबीन विधि से दुर्लभ ऑपरेशन

चौबीस घंटे में बच्चे को अस्पताल से छुट्टी दे दी गई। महावीर वात्सल्य अस्पताल के डॉक्टरों ने ढाई साल के बच्चे के हृदय के दो छिद्र एक साथ बन्द कर उसे ठीक कर दिया। दूरबीन विधि से हुए इस सफल ऑपरेशन के बाद

चौबीस घंटे में बच्चे को अस्पताल से छुट्टी दे दी गई। महावीर वात्सल्य अस्पताल के बाल हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ मेजर प्रभात कुमार की टीम ने यह सफलता हासिल की है। सफल ऑपरेशन के बाद डाॅक्टर प्रभात ने बताया कि बिहार का यह पहला ऐसा मामला है जब एक बार में इतने छोटे बच्चे के हृदय के दो छिद्र बन्द कर उसे स्वस्थ किया गया। वैशाली जिला के जन्दाहा के रहनेवाले सौरभ कुमार को गुरुवार की सुबह महावीर वात्सल्य अस्पताल में भर्ती किया गया। गुरुवार की शाम को दूरबीन विधि से हृदय के दोनों छिद्र बन्द कर दिए गये। मेडिकल टर्म में हृदय के इन दो छिद्रों को एएसडी और पीडीए कहते हैं। ऑपरेशन के बाद जांच में बच्चे के स्वस्थ पाए जाने पर शुक्रवार दोपहर उसे महावीर वात्सल्य अस्पताल से छुट्टी दे दी गई। डॉ.प्रभात ने बताया कि हृदय के जन्मजात छिद्रों के कारण बच्चे का वजन नहीं बढ़ पा रहा था। ढाई साल का होने पर भी उसका वजन मात्र 10 किलोग्राम था। उसे खून की कमी भी थी। बच्चे के हृदय के इको जांच में दो जन्मजात छिद्र पाए गये। बच्चे के परिजनों ने देश के विभिन्न स्थानों पर बच्चे का इलाज कराया। आखिरकार उन्होंने महावीर वात्सल्य अस्पताल में डॉ.प्रभात से संपर्क किया। डॉ. प्रभात ने बताया कि बच्चे का यह ऑपरेशन मुख्यमंत्री चिकित्सा कोष से निःशुल्क किया गया। इस दुर्लभ ऑपरेशन को सफलतापूर्वक अंजाम देनेवाली टीम में डाॅ प्रभात के अलावा डॉ. नलिन विलोचन, टेक्नीशियन चंदन, सिस्टर राखी, मोनिका आदि शामिल थे। महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने इस बड़ी उपलब्धि के लिए अस्पताल के चिकित्सकों और चिकित्सा कर्मियों को बधाई दी है।

- महावीर मन्दिर के जनसम्पर्क प्रभारी श्री विवेक विकास की लेखनी से

पुस्तक प्राप्ति हेतु सम्पर्क करें-
मो. 9334468400

व्रत-पर्व

अग्रहायण, 2080 वि. सं. (28 नवम्बर से 26 दिसम्बर, 2023ई.)

पं. मुक्ति कुमार झा, ज्यौतिष परामर्शदाता, महावीर ज्योतिष मण्डप, महावीर मन्दिर, पटना

बीड़पञ्चमी, मनसादेवीशयनम्, मार्गशीर्ष कृष्ण पञ्चमी, 2 दिसम्बर, 2023ई. शनिवार

यह नाग-पूजन परम्परा का पर्व है। श्रावण कृष्ण पञ्चमी को नागपूजा आरम्भ होती है, जो इस दिन समाप्त होती है। मान्यता के अनुसार नागों की देवी मनसा इस दिन शयन हेतु चली जाती हैं।

2. उत्पन्ना एकादशी व्रत, मार्गशीर्ष कृष्ण एकादशी, दि. 8 दिसम्बर, 2023ई. शुक्रवार

3. विवाह-पञ्चमी, मार्गशीर्ष शुक्ल पञ्चमी, दिनांक 17 दिसम्बर, 2023ई. रविवार

मान्यता के अनुसार इसी दिन श्री राम एवं जगज्जननी सीता का विवाह हुआ था। गोस्वामी तुलसीदास ने अगहन मास तथा मूल नक्षत्र का उल्लेख किया है

मंगल मूल लगन दिनु आवा। हिम रितु अगहनु मासु सुहावा॥
ग्रह तिथि नखतु जोगु बर बारू। लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू॥

(रामचरितमानस, बालकाण्ड, 312)

परम्परा के आधार पर पञ्चमी तिथि को यह उत्सव मनाया जाता रहा है। महावीर मन्दिर में भी दो दिनों का भव्य कार्यक्रम आयोजित किया जाता है, जिसमें जनकपुर की परम्परा के कलाकार आकर इसकी झाँकी प्रस्तुत करते हैं।

4. मोक्षदा एकादशी एवं गीता-जयन्ती, मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी तिथि, 23 दिसम्बर, 2023ई. शनिवार

मान्यता के अनुसार इसी दिन महाभारत की युद्धभूमि में भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता का उपदेश किया था। इस प्रकार, यह दिन श्रीमद्भगवद्गीता के आविर्भाव का दिवस माना जाता है। इस दिन विभिन्न स्थानों पर, शिक्षण-संस्थाओं में भगवद्गीता के महत्त्व पर गोष्ठियाँ आयोजित की जाती हैं। महावीर मन्दिर में भी इस अवसर पर विशिष्ट विद्वानों का भाषण आयोजित किया जाता रहा है।

5. पूर्णिमा व्रत, (सन्ध्याकालिक पूर्णिमा तिथि में), 26 दिसम्बर, 2023ई. मंगलवार

6. हरिहरक्षेत्र स्नान, मार्गशीर्ष पूर्णिमा, (प्रातःकालिक पूर्णिमा में) 26 दिसम्बर, 2023ई. मंगलवार

सोनपुर में गण्डक एवं गंगा के मिलनस्थल को हरिहर क्षेत्र कहा गया है। यह परम पावन स्थल बिहार में है। यहाँ प्राचीन काल में कभी दक्षिण से आनेवाली सोन की धारा भी मिलती थी, और इस स्थल का माहात्म्य त्रिवेणी संगम के जैसा था। वर्तमान काल में भी सोन नदी का बालू यहाँ तक आ जाता है, अतः इसे गंगा, गण्डक एवं सोनभद्र के मिलन का स्थल कहा जा सकता है। मार्गशीर्ष पूर्णिमा के दिन यहाँ स्नान का माहात्म्य है।

***

रामावत संगत से जुड़ें

1) रामानन्दाचार्यजी द्वारा स्थापित सम्प्रदाय का नाम रामावत सम्प्रदाय था। रामानन्द-सम्प्रदाय में साधु और गृहस्थ दोनों होते हैं। किन्तु यह रामावत संगत गृहस्थों के लिए है। रामानन्दाचार्यजी का उद्घोष वाक्य– 'जात-पाँत पूछ नहीं कोय। हरि को भजै सो हरि को होय' इसका मूल सिद्धान्त है।

2) इस रामावत संगत में यद्यपि सभी प्रमुख देवताओं की पूजा होगी, किन्तु ध्येय देव के रूप में सीताजी, रामजी एवं हनुमानजी होंगे। हनुमानजी को रुद्रावतार मानने के कारण शिव, पार्वती और गणेश की भी पूजा श्रद्धापूर्वक की जायेगी। राम विष्णु भगवान् के अवतार हैं, अतः विष्णु भगवान् और उनके सभी अवतारों के प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी भी पूजा होगी। श्रीराम सूर्यवंशी हैं, अतः सूर्य की भी पूजा पूरी श्रद्धा के साथ होगी।

3) इस रामावत-संगत में वेद, उपनिषद् से लेकर भागवत एवं अन्य पुराणों का नियमित अनुशीलन होगा, किन्तु गेय ग्रन्थ के रूप में रामायण (वाल्मीकि, अध्यात्म एवं रामचरितमानस) एवं गीता को सर्वोपरि स्थान मिलेगा। 'जय सियाराम जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिधान' प्रमुख गेय पद होगा।

4) इस संगत के सदस्यों के लिए मांसाहार, मद्यपान, परस्त्री-गमन एवं परद्रव्य-हरण का निषेध रहेगा। रामावत संगत का हर सदस्य परोपकार को प्रवृत्त होगा एवं परपीड़न से बचेगा। हर दिन कम-से-कम एक नेक कार्य करने का प्रयास हर सदस्य करेगा।

5) भगवान् को तुलसी या वैजयन्ती की माला बहुत प्रिय है अतः भक्तगण को इसे धारण करना चाहिए। विकल्प में रुद्राक्ष की माला का भी धारण किया जा सकता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र या ललाट पर सिन्दूरी लाल टीका (गोलाकार में) करना चाहिए। पूर्व से धारित तिलक, माला आदि पूर्ववत् रहेंगे। स्त्रियाँ मंगलसूत्र-जैसे मांगलिक हार पहनेंगी, किन्तु स्त्री या पुरुष अनावश्यक आडम्बर या धन का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

6) स्त्री या पुरुष एक दूसरे से मिलते समय राम-राम, जय सियाराम, जय सीताराम, हरि -जैसे शब्दों से सम्बोधन करेंगे और हाथ मिलाने की जगह करबद्ध रूप से प्रणाम करेंगें।।

7) रामावत संगत में मन्त्र-दीक्षा की अनूठी परम्परा होगी। जिस भक्त को जिस देवता के मन्त्र से दीक्षित होना है, उस देवता के कुछ मन्त्र लिखकर पात्र में रखे जायेंगे। आरती के पूर्व गीता के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भक्त का संकल्प कराने के बाद उस पात्र को हनुमानजीके गर्भगृह में रखा जायेगा।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। (गीता, 2.7)

8) आरती के बाद उस भक्त से मन्त्र लिखे पुर्जा में से कोई एक पुर्जा निकालने को कहा जायेगा। भक्त जो पुर्जा निकालेगा, वही उस भक्त का जाप्य-मन्त्र होगा। मन्दिर के पण्डित उस मन्त्र का अर्थ और प्रसंग बतला देंगे, बाद में उसके जप की विधि भी। वही उसकी मन्त्र-दीक्षा होगी। इस विधि में हनुमानजी परम-गुरु होंगे और वह मन्त्र उन्हीं के द्वारा प्रदत्त माना जायेगा। भक्त और भगवान् के बीच कोई अन्य नहीं होगा।

9) रामावत संगत से जुड़ने के लिए कोई शुल्क नहीं है। भक्ति के पथ पर चलते हुए सात्त्विक जीवन-यापन, समदृष्टि और परोपकार करते रहने का संकल्प-पत्र भरना ही दीक्षा-शुल्क है। आपको सिर्फ https://mahavirmandirpatna.org/Ramavat-sangat.html पर जाकर एक फार्म भरना होगा। मन्दिर से सम्पुष्टि मिलते ही आप इसके सदस्य बन जायेंगे।

***

पत्रिका-पंजीयन सं. 52257/90

महावीर मन्दिर का नवीनतम प्रकाशन

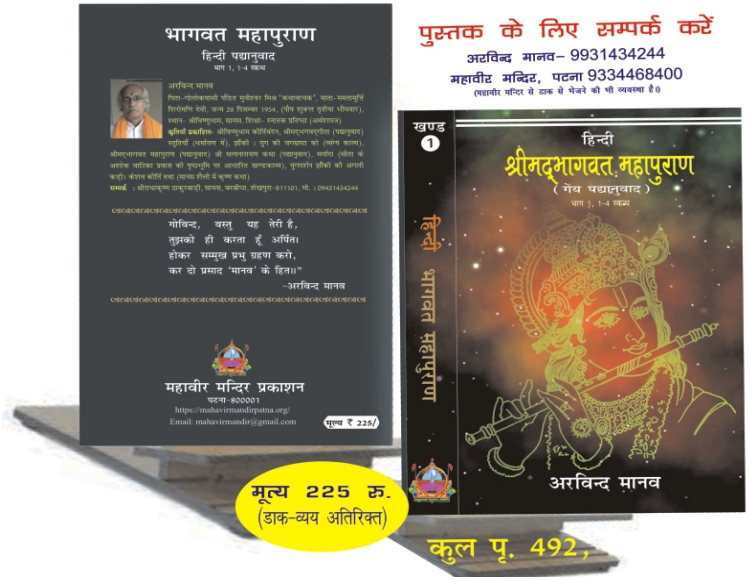

महावीर मन्दिर का प्रकाशन

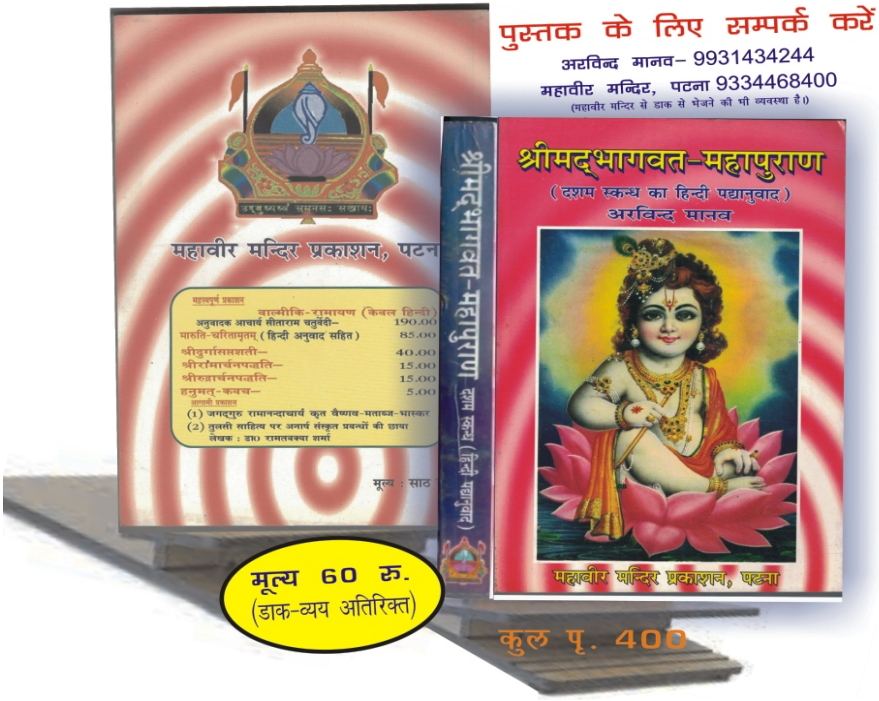

श्री महावीर स्थान न्यास समिति के लिए महावीर मन्दिर, पटना- 800001 से ई-पत्रिका के रूप में https://mahavirmandirpatna-org/dharmayan/ पर निःशुल्क वितरित। सम्पादक : भवनाथ झा।